सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिकपत्र

संस्थापक, सम्पादक तथा संरक्षक

योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

अङ्क [illegible] वर्ष [illegible]

पुण्यमाता [illegible] लिये हुए गोद में योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज तथा उनकी बाईं ओर उनके गुरुभाई श्री [illegible] जी खड़े हैं। अन्य शिष्य व साधक सब पीछे खड़े हैं एवं श्री सूरज भाई (बैठे हुए) श्री सद्गुरुदेव के चरणों में प्रणाम कर रहे हैं।

[illegible]

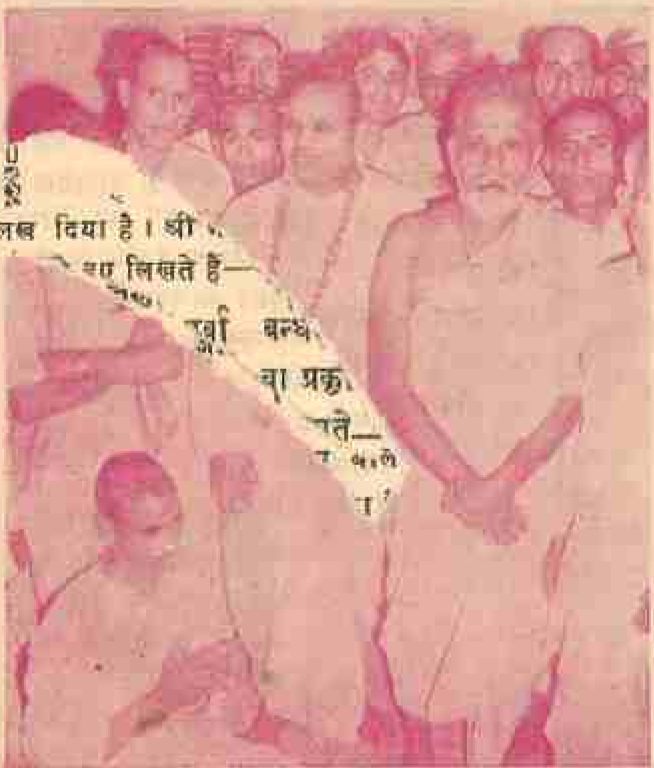

वार्षिक मूल्य १० रु०

एक अङ्क का १ रु०

स्पष्ट लिख दिया है। श्री [illegible]

जो [illegible] यह लिखते हैं—

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन, सवांई एत्मादपुर ज़िला आगरा।

प्रकाशक :—
श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन
सवाई एत्मादपुर
आगरा

संयुक्त सम्पादक
श्री दिव्य

मुद्रक :—
कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस
आगरा-१

इस अंक में :—

लेख	लेखक	पृष्ठ
१. यमराज का अतिथि		१
२. अनादि महासिद्ध श्रीकृष्ण और उनका योग-ऐश्वर्य	अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज	२
३. हंसयोग और नाद	श्री पं० मनोहरलाल शर्मा	११
४. कुछ हृदयग्राही स्मृतियां	श्री प्रो० ऋषिराम जी शर्म्मा	२०
५. क्या करना चाहिए	समर्थ रामदास	२४
६. श्री श्री १०८	श्रीमती सरिता शर्मा एम०ए०	२५
७. सदा एक भाव में रहो	एक साधक	२८
८. बहन श्री द्रोपदी देवी जी		२९
९. पवित्र प्रज्ञा	योग वाशिष्ठ	३२
१०. जोड़	श्री रामचरन सनाढ्य	३३
११. चिन्ताओं को भगाओ		३७
१२. सिद्धयोगी सोमवार गिरि जी	श्री म... शास्त्री	३८
१३. ईश्वरोपासना की इच्छा क्यों न...		
१४. एक वयोवृद्ध साधक के ...		
१५. ज्ञान-गंगा		
१६. आश्रम-समाचार		४६
१७. श्री गुरुदेव जी ...		४८
१८. जीवनमुक्त ...	टाइटिल	

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

वर्ष २
अङ्क २

''ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुविशदयन् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः'॥

मई
सन् १९६६ ई०

❀ यमराज का अतिथि ❀

...कर किया ह... भूत्वा क्षणमपि युवा कामरसिकः,
...लिख दिया है। ...नः क्षणमपि च संपूर्णं विभवः॥
...लिखते हैं... जरा ... इव वलीमंडिततनुर्नरः,
संसारांते ...र्वा ... यमधानी जवनिकाम्॥

...ना प्र...

अर्थ :—कुछ क्षण ...लक रहता है और कुछ समय के लिए जवान होकर रसिक बन जाता है। क्षण में धन से हीन है और क्षण में ऐश्वर्यों का मालिक है। क्षण में बुढ़ापे का नाटक दिखाकर यमराज का अतिथि बन जाता है।

हमारा विशेष लेख—

अनादि महासिद्ध श्रीकृष्ण और उनका योग-ऐश्वर्य

[योगीराज अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज]

जगदात्मा अखिल लोकपावन भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में श्रीमद्भागवत या अन्यान्य पुराणों में उनके परात्पर होने का निर्देश मिलता है। यथा :—

श्री मद्भागवत के उपाख्यान में जिस समय श्री ब्रह्माजी या अन्यान्य सभी देवों को साथ लेकर और गौ-रूपधारिणी अश्रुमुखी पृथ्वी को साथ लेकर क्षीर सागर पर गये और वहां जाकर क्षीरोदशायी भगवान् नारायण की स्तुति करनी आरम्भ की। देवताओं की विनती सुन भगवान् विष्णु ने उनको उत्तर दिया था। उत्तर एक अव्यक्त वाणी के रूप में था जो इस प्रकार है—

गिरं समाधौ गगने समीरितां।
निशम्यवेधास्त्रिदशानुवाचह ॥
गां पौरुषीं मे शृणुतामराः पुनर्वि-
धीयतामाशु तथैव माचिरम् ॥
पुरैव पुंसाऽवधृतो धराज्वरोभव-
द्भिरंशैर्य दुषूपजन्यताम् ॥
सयावदुर्व्यभिर मीश्वरेश्वरः।
स्वकालशकत्याक्षपयंश्चरेद्भुवि ॥

वसुदेव गृहे साक्षाद् भगवान पुरुषः परः
जनिष्यते तत्प्रियार्थसम्भवन्तु सुरस्त्रियः ॥

अर्थात् क्षीर सागर पर पुरुष सूक्त के द्वारा भगवान नारायण की स्तुति करने के बाद श्री ब्रह्माजी को अपने हृदयाकाश में समाधि के द्वारा जो भगवान् नारायण की वाणी सुनाई दी थी वह पौरुषी वाणी उन्होंने समाधि से उठ करके देवताओं को सुनाई थी और स्पष्ट शब्दों में यह कहा कि मुझे समाधि में जो भगवान् नारायण की वाणी सुनाई दी है अ... उस वाणी के ... ाग जा ... यदुकुल में ... क्योंकि उस वाणी ने मुझे ... है कि वसुदेवजी के घर में स्वयं ...न् पर-पुरुष प्रादुर्भूत होंगे और उ... आमोद प्रमोद के लिए देवलोक की देवांगनायें भी भूमण्डल पर जाकर जन्म लें। श्रीमद्भागवत के इस प्रकरण से और इसी प्रकार के पुराणों के अन्तर्गत आये हुए अन्यान्य प्रकरणों से श्रीकृष्ण का पर-पुरुष होना अनायास ही सिद्ध हो जाता है, देवकी ने भगवान् के प्रगट होने पर जो स्तुति की वह इस प्रकार है :—

यस्यांशांशांशभागेन विश्वोत्पत्ति लयोदयाः भवन्तिकिल विश्वात्मंस्तं-त्वाद्याहं गतिं गता ॥

अर्थात् हे प्रभो जिसके अंशाग्रंश को धारण करके ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि प्रमुख देव सृष्टि का पालन पोषण व संहार करते हैं उन सबके आधार आप ही हैं। इसी प्रकार से ब्रह्म स्तुति में इन्द्र के द्वारा की गई स्तुति में श्रीमद्भागवत में और अन्यान्य पुराणों में भी श्रीकृष्ण का वर्णन पर-पुरुष के रूप में किया गया है इसलिए वह अनादि काल से ही रहने वाले महासिद्ध है इसमें कोई संशय की बात नहीं। जहाँ पर योग-दर्शन में भगवान पतंजलि देव ने ईश्वर का लक्षण—

क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः ॥

...कर किया है वहाँ पर यह बिल्कुल स्पष्ट लिख दिया है। श्री भगवान व्यासदेव जी भाष्य करते हुए लिखते हैं—

यथा मुक्तस्य पूर्वा बन्धकोटिः प्रज्ञायते नैवमीश्वरस्य, यथा वा प्रकृति-लीनस्योत्तरा बन्धकोटिः सम्भाव्यते—नैवमीश्वरस्य, सतु सदैव मुक्तः सदैवे-श्वरः इतिः।

अर्थात् जो लोग तीन बन्धनों को काट-कर मुक्ति को प्राप्त होते हैं वे पहले बन्धन में हैं और जो योगी लोग प्रकृतिलीन हैं और अपने आपको कैवल्य पद में विलीन समझ रहे हैं वे बाद में पुनः बन्धकोटि के अन्दर आ जायेंगे किन्तु ये सारे के सारे ईश्वर के साथ बिल्कुल नहीं होते। इसलिए वह ईश्वर हमेशा ही मुक्त है और हमेशा ही ईश्वर है। उसका ऐश्वर्य, साम्यातस्य विनिर्मुक्त है। अतः अखिल आत्मा भगवान् श्रीकृष्ण का ऐश्वर्य भी साम्यातस्य विनिर्मुक्त है। इसलिए उनका आदि महासिद्ध होना अनायास ही सिद्ध है। भगवान् श्रीकृष्ण को लीलावतार कहते हैं किन्तु उनके जीवन में घटित होने वाली घटनायें उनको एक सरल ऐश्वर्य सम्पन्न योगीराज का ही अवतार सिद्ध करती हैं। जन्म से लेकर स्वधामगमन तक उनकी जितनी भी लीलायें हुई हैं उन सभी में से एक-एक से योग टपकता है। उनका कारावास में जन्म लेना और जन्म भी एक अद्भुत जन्म जिस प्रकार संसार में कोई बालक जन्म नहीं लिया करता उसके अतिरिक्त विलक्षण ढंग से अपनी माता के सामने अपने दिव्य चतुर्भुज रूप से प्रगट होना जैसा कि श्रीमद्भागवत में लिखा है :—

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं।
चतुर्भुजं शङ्खगदार्युदायुधम् ॥
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभ।
पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम् ॥
महार्हवैदूर्यकिरीट कुण्डल-।
त्विषा परिष्वक्तसहस्त्र कुन्तलम् ॥
उद्दामकाञ्च्यङ्गदकंकणादिभि—
विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥

अर्थात् ' वसुदेवजी ने देखा कि उनके सामने किरीट, कुण्डल एवं वरमाला धारण किये हुये मेघ वर्ण सुन्दर श्याम शरीर वाला और अपनी चारों भुजाओं में शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुये एक सुन्दर बालक खड़ा है। इसी प्रकार से देवकी ने उनके रूप को देखा और उस अद्भुत रूप को देखकर उस महायोगीराज के उस तेज को सहन न कर सकी और उसने विनम्र भाव से प्रार्थना की कि हे प्रभो - इस धारणा ध्यान के लिए मंगलमय जो आपके दिव्य चतुर्भुज स्वरूप हैं वह हम हाड़-मांस चमड़े के शरीर धारण करने वाले साधारण मनुष्य लोक के जीव इसके अधिकारी नहीं हैं। इस समय आपने मेरे ऊपर से जन्म लेने का अभिनय किया है, इसलिए अपने इस अलौकिक दिव्य रूप तेज को छिपाकर साधारण मनुष्य रूप में मेरे सामने प्रगट होइये। अपनी माता देवकी को इस प्रकार भयभीत देखकर अपने उस दिव्य चतुर्भुज रूप से अन्तर्हित होकर उसके सामने अपनी योगमाया से बालक रूप में प्रगट हो गये। इस प्रकार अपने अद्भुत दिव्य चतुर्भुज रूप का माता के सामने प्रगट करना और फिर उसको छिपा लेना ये उनकी स्वाभाविक योग शक्ति का अद्भुत प्रभाव था। किन्तु एक साधक सिद्ध योगी के लिये ये क्रिया अपनी साधना के बल पर आधारित है। और उसको संयम के द्वारा ही ऐसा करना पड़ेगा। किन्तु आदि महासिद्ध श्रीकृष्ण के लिये वह न के बराबर सहज कर्म था।

पतंजलि योग दर्शन एवं अन्तर्ध्यान क्रिया

भगवान् पतंजलि देव अपने योग सूत्र में बतलाते हैं—

कायरूपसंयमात्तद्ग्राह्य शक्ति स्तम्भे चक्षुः प्रकाशासंप्रयोगेऽन्तर्धानम् ॥

अर्थात् जिस समय योगी अपने संयम के बल से काया के रूप में अपने मन को संयमित करता है उस समय उसके शरीर पर सर्व-साधारण की आंखों का प्रभाव नहीं पड़ सकता, चक्षुः प्रकाशासंयोग होने के कारण वह अपने आपको छिपा लेता है। ये साधना साधन सिद्ध योगी को अपने योग-सिद्ध ऐश्वर्य के बल पर संयम के बल से करनी पड़ेगी। किन्तु महायोगी ईश्वर सिद्धों के महासिद्ध श्रीकृष्ण के लिये यह अद्भुत कर्म कुछ भी अर्थ नहीं रखता। उन्होंने अपने माता-पिता के सामने अपने दिव्य चतुर्भुज तेजोमय स्वरूप को प्रगट करके दिखला भी दिया और तत्काल उनकी विनय करने पर अपने उस दिव्य रूप को छिपा भी लिया और तत्काल ही सहजकाय निर्माण शक्ति से अपने आपको बालक रूप में प्रगट भी कर दिया। यह उन महायोगेश्वर की योग ऐश्वर्य की पहली झलक थी जो देवकी वसुदेव ने अपनी आंखों से देखी। इसके बाद उन्होंने अपने योग बल से बाल-लीला आरम्भ की जिस कथा-प्रसंग को प्रायः सभी कृष्ण भक्त सब जानते ही हैं।

योगेश्वर श्रीकृष्ण का सहज शुभ संकल्प

कंस के कारागार से श्री वसुदेवजी भगवान् बालरूप श्रीकृष्ण को गोकुल पहुँचा

आये थे। कंस के कारागार के दरवाजों का अपने आप खुल जाना और वसुदेव के लौट आने पर पुनः उसी प्रकार से बन्द हो जाना यह उनके स्वाभाविक शक्ति संकल्प का ही परिणाम था। उनके लिये यह कोई कठिन कार्य नहीं था। केवल मात्र संकल्प में आना ही उन सब कामों का जनक था।

साधन-सिद्धों की संकल्प सिद्धि का साधन

एक साधक योगी को जन्म-जन्मान्तरों के सत्य को धारण करने की यह सिद्धि प्राप्त होती है योग दर्शन हमें बतलाता है—

सत्य प्रतिष्ठायां क्रिया फलाश्रयत्वम्।

अर्थात् सत्य प्रतिष्ठ योगी की वाणी क्रिया फल वाली हो जाया करती है और ज्योंही मनुष्य बाह्य रूप से सत्य की साधना करता हुआ समाधि के द्वारा ऋतम्भरा प्रज्ञा को प्राप्त करता है तो वह सत्य संकल्प हो जाता है। उसको अनायास ही सिद्धि प्राप्त रहा करती है। ऋतम्भरा प्रज्ञा का अर्थ ऋतं, सत्यं, बिभर्ति या ऋतम्भरा। अर्थात् जिस योगी की बुद्धि सत्य को धारण करती है वह ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त योगी जो भी मन में संकल्प करता है, प्रकृति उसको स्वीकार कर लेती है। और उसके सकल्पित कार्य अनायास ही होने लग जाया करते हैं। यह साधारण मनुष्य अपने साधन के बल से प्राप्त कर पाता है किन्तु अनादि महासिद्ध श्रीकृष्ण के लिये यह कोई भी बड़ी बात नहीं थी। वे स्वयं सत्य स्वरूप हैं। श्री मद्भागवत के दसवें स्कन्ध के दूसरे अध्याय में जहाँ पर गर्भ स्तुति की गई है वहाँ पर ब्रह्माजी ने उनकी स्तुति करते हुए उनको सत्यात्मक कहा है—

सत्य व्रतं सत्य परं त्रिसत्यं।
सत्यस्य योनिनिहितं च सत्ये॥
सत्यस्य सत्यमृत सत्यनेत्रं।
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः॥

अर्थात् ब्रह्माजी करबद्ध स्तुति करते हुए उससे प्रार्थना करते हैं कि सदा सर्वथा सत्य रहने वाले सत्य परायण सत्यात्मक हम आपकी शरण में होते हैं। इसलिए सत्य संकल्प अनादि महासिद्ध श्रीकृष्ण के लिये कारागार के दरवाजों का खुल जाना और उनके लौट आने पर फिर बन्द हो जाना एक बहुत साधारण कर्म था किन्तु यह शक्ति साधक योगी के लिये बड़ी कठिन साधना के बाद प्राप्त है। इसके बाद भगवान् की गोकुल लीलायें प्रारम्भ होती हैं। नन्दरायजी ने उनका जन्मोत्सव मनाया। गीत, वाद्य आदि के सब उपक्रम हुए और उसके बाद भी जिस समय नन्दरायजी कंस को वार्षिक कर देने के लिये गये हुये थे उसी सुअवसर को पाकर पूतना सुन्दर रूप धारण कर गोकुल में आ गई। और धूम-धाम करके नन्द के घर में पहुँची और अनायास ही बालक रूप में छिपे उस परम योगेश्वर को अपनी गोद में लेकर अपने विषमय स्तनों का पान कराया किन्तु परिणाम कुछ भी नहीं निकला प्रत्युत श्रीकृष्ण के शरीर पर अणुमात्र विष का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और जैसे के तैसे अपने

दिव्य स्वरूप में अमर रहे और खेलते रहे। इसके विपरीत पूतना के प्राण पखेरू उड़ गये एवं श्रीकृष्ण के संकल्प से उसने सद्‌गति पायी। यह उस अनादि महासिद्ध की सहज वसिता थी जिसमें पंच महाभूतों पर पूर्णाधिकार था जिसमें उनके किसी प्रकार की कोई साधना करने की आवश्यकता नहीं पड़ी, क्योंकि यह उनका सदैव ईश्वरः सदैव मुक्तः कथनानुसार सहज ही है। यद्यपि साधन करने वाला योगी साधन सिद्धता को पाकर इस शक्ति को प्राप्त कर लेता है किन्तु ये उनकी साधन सिद्धता है और अनादि महासिद्धि श्रीकृष्ण का यह सहज वसिकार है। इसे योगदर्शन बतलाता है—

परमाणु परम महत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥

अर्थात् योगी का संयम बल इतना बढ़ जाता है कि वह चाहे परमाणुओं से लेकर परम महत्व अर्थात् मूल प्रकृति पर्यन्त पूर्ण वसीकार रहता है। जहां भी जिस वस्तु में अपने को संयमित करता है उस तत्व को जान लेता है। और उस पर वह अधिकार प्राप्त कर लेता है। इसी बल के आधार पर भूतजय की शक्ति को प्राप्त करता है।

योगी का भूतजय एवं अणिमादिक की प्राप्ति

एक साधक योगी पंच महाभूतों पर अधिकार प्राप्त करने के लिये संयम करता है और उनका साक्षात्कार करता है। बाद में कठिन प्रयास के बाद वह भूतजय की सिद्धि को प्राप्त करता है और अणिमादि का अधिकारी बनता है। योग-दर्शन में भगवान् पतंजलि देव लिखते हैं—

स्थूल स्वरूप सूक्ष्मान्वयार्थवत्त्व संयमाद्भूतजयः ।

अर्थात् योग दर्शन में पाँच भूत माने हैं। १. स्थूल, २. स्वरूप, ३. सूक्ष्म, ४. अन्वय ५. अर्थवत्त्व । वह इस प्रकार है—

१. स्थूल—पंच महाभूतों का स्थूल स्वरूप इस प्रकार है जैसे पृथ्वी का पृथ्वी ही स्थूल रूप है और जल का जल ही स्थूल रूप है, वायु का वायु और आकाश का खाली पोल। यही इन पंच महाभूतों में स्थूल रूप है जो स्वरूप हर व्यक्ति को देखने में आते हैं।

२. स्वरूप—दूसरा रूप उनका स्वरूप है। उदाहरण के लिये जैसे पृथ्वी में गन्ध; जल में चिकनाहट, अग्नि में गर्मी, वायु में कम्पन और आकाश में पोल। ये इन पंच महाभूतों का स्वरूप है।

३. सूक्ष्म—तीसरा रूप सूक्ष्म है जिनको तन्मात्र कहा जाता है, जैसे पृथ्वी का तन्मात्र गन्ध, जल का रस तन्मात्र अग्नि का रूप तन्मात्र; वायु का स्पर्श तन्मात्र यह पंच महाभूतों का तीसरा रूप है।

४. अन्वय—चौथा रूप अन्वय है। अन्वय का अर्थ ओत-प्रोत रहना, जैसे सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण ये तीनों गुण अपने प्रकाश, प्रवृति और स्थिति वाले धर्मों से सर्वत्र अनुगत रहते हैं यही पंच महाभूतों का अन्वय रूप है।

५. अर्थवत्त्व—अर्थात् इनका अर्थवान होना, इनसे कोई उपकार हो, लाभ हो, सो ये पांचों महाभूत भोग अपवर्ग के दाता हैं। महाभूत के सम्मिश्रण से ही मनुष्य भोग का भोक्ता है। इसलिए नित्य चेतन आत्मा बौद्धिय धर्मों का अनुगामी होकर पंच महाभूतों में जनित सभी प्रकार के दृश्यात्मक भोगों का भोक्ता रहता है। दृश्य का दूसरा कार्य अपवर्ग है जिस समय जीव वैराग्य भाव को प्राप्त होकर बराबर सूक्ष्मतर और उसकी सूक्ष्मतम तत्वों में संयम करता हुआ आगे बढ़ता रहता है वह अपवर्ग को प्राप्त कर लेता है। भूतों के इन भिन्न पाँच रूपों में जब तक योगी साक्षात् पर्यन्त बराबर संयम करता रहता है तो उसके फलस्वरूप वह भूत जय को प्राप्त होता है। और भूत जय कर लेने पर—

ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः काय संपत्तद्धर्मानभिघातश्च ॥

अर्थात् पंच भूतों पर विजय प्राप्त कर लेने पर अणिमादिक सिद्धियें योगी को अनायास ही प्राप्त हो जाया करती हैं। इस सूत्र के भाष्य में भगवान व्यास देवजी लिखते हैं—

तत्राणिमा=भवत्यणुः, लघिमा=लघुर्भवति, महिमा=महान भवति प्राप्ति=अंगल्यग्रेणापि स्पृशति चन्द्रमसम्, प्राकम्यम्=इच्छाऽनभिघातो भूमावुन्मज्जति निमज्जति यथोदके वशित्वम=भूत भौतिकेषु वशी भवतिः अवश्यश्चान्येषाम, ईशितृत्वं=तेषाम्प्रभवाप्ययव्यूहानामीष्टे, यत्र कामावशायित्वं=सत्य संकल्पता यथा संकल्पस्तथा भूतप्रकृतीनामवस्थान।

अर्थात् भूत जय प्राप्त कर लेने पर योगी को अणिमादिक सिद्धियाँ जो अनायास प्राप्त हो जाती हैं।

१. अणिमा : भवत्यणु—अणुमात्र हो जाना।

२. लघिमा : लघुर्भवति—हल्का हो जाना।

३. महिमा : महान भवति—बड़ा हो जाना।

४. प्राप्ति : अङ्गुल्यग्रेणापिस्पृशति—अंगुली के अगले भाग से चन्द्रमा को छू लेने की ताकत होना।

५. प्राकाम्य : इच्छाऽनभिघातो भूमावुन्मज्जति—किसी भी प्रकार की इच्छा का न रुकना, पूर्ण हो जाना, चाहे तो योगी जिस प्रकार सर्व साधारण मनुष्य जल में गोता लगा लिया करते हैं और बाहर निकल आया करते है इसी प्रकार पृथ्वी में प्रवेश कर बाहर निकल आयें।

६. वसित्वम् : भूतभौतिकेषुवशीभवति : अर्थात् पंच महाभूतों से रहने वाले सभी पदार्थों पर उस योगी का पूर्ण वशीकार होता है और वह स्वयं किसी के वश में नहीं रहता।

७. ईशत्व : तेषाम्प्रभवोप्यव्यूहाना-मीष्टे : अर्थात् पंच महाभूतों के भौतिक कार्यों को बनाने और बिगाड़ने की सामर्थ्य रखना।

८. यत्रकामावसायत्वम्: सत्य सङ्कल्पत्वया : अर्थात् सत्य संकल्पता जैसे योगी की इच्छा होती है पंच महाभूतों का उस प्रकार अवस्थान हो जाता है और इन महा सिद्धियों को पाकर योगी सर्व सामर्थ्यवान बन जाता है। महाभूतों का कोई भी कार्य उसके प्रतिकूल नहीं करता प्रत्युत उसको काय संम्पत्त और प्रगट हो जाती है। कायसम्पत्ति का भगवान् पतंजलि देव ने इस प्रकार कहा है—

रूप लावण्य बलवज्र संहननत्वानि काय सपत्।

अर्थात् रूप = अत्यन्त रूपवान कान्तिवान वज्र के समान दृढ़ और सब प्रकार अच्छेद्य शरीर वाला हो गया है। सब प्रकार से शरीर की अच्छेद्यता, अभेदता को प्राप्त रहना यह योगी की कायसम्पत्ति है। जो भूतजय प्राप्त होने पर स्वभाव से ही बनी रहती है। साधक सिद्ध योगी को जीवन भर की कठिन साधना के बाद भूत जयता प्राप्त होती है। तब उसके ऊपर भूतों के दुष्परिणाम नहीं हो पाते। भूतजय योगी विषपान करके उसको सहज में ही पचा जाता है और अमृत के गुणों को अपने अन्दर प्रगट कर लेता है। साधना करने वाले योगी को ये सम्पत्ति बड़े कठिन प्रयत्न के बाद प्राप्त हुआ करती है किन्तु अनादि महासिद्ध सदैव ईश्वरः सदैव मुक्तः के स्वरूप को धारण करने वाले अनादि महासिद्ध सर्वतः परिपूरितम्; श्रीकृष्ण के लिये यह भूत जय आदि ऐश्वर्य अनायास ही प्राप्त है। अतः पूतना के स्तनों से विषपान करने पर भी शरीर में किसी प्रकार का कुप्रभाव न हो करके उसकी काय सम्पत्ति को ज्यों का त्यों बने रहना उस महायोगी के भूत जयात्मक पूर्णाधिकार को पूर्णरूपेण प्रगट करती है।

इससे आगे श्रीमद्भागवत में संकट भंजन जगदात्मा भगवान् श्रीकृष्ण अपने पलने में सो रहे थे। कुछ समय बाद उनकी आँख खुली वह भूख के कारण दूध पीने की इच्छा रखते हुए रोने लगे। काफी समय तक माता यशोदा उन्हें देख नहीं पायी। माता की इस उपेक्षा के कारण भगवान् ने थोड़ा-सा कोप का अभिनय किया और पास मे खड़े हुए एक बड़े भारी सकट अर्थात् बैलगाड़ी को बल से पैर मार कर तोड़ डाला। उस पर काफी दही दूध रखा था वह बर्तन भाड़ों के टूट जाने के कारण पृथ्वी पर फैल गया। सभी ब्रजवासियों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतनी भारी गाड़ी सहसा कैसे टूट गयी। भगवान् श्रीकृष्ण के बालसखा छोटे-छोटे बच्चे अपनी तोतली जबान से नन्द बाबा और यशोदा माता को बतलाने लगे कि तुम्हारे लाला इस कन्हैया ने गुस्से में आकर पैर मारकर इस गाड़ी को तोड़ दिया है। सभी बूढ़े-बड़ों के मन में पूरा-पूरा विश्वास नहीं हो पाया क्योंकि श्री कृष्ण तो अभी बिल्कुल छोटे बच्चे थे। अभी तो उन्होंने करवट बदलना ही सीखा था। उनके पैर मारने से सकट का टूट जाना असम्भव-सी बात थी। किन्तु बालों के भंडार अखिल आत्मा श्रीकृष्ण के लिये ये

सब खेल जैसी बात थी । उन्होंने अपनी इस पल्नीय-सी अवस्था में ही सकट को पैर मार कर अपने अतुल बल का परिचय दे दिया । यह उनका बिना किसी साधना के सहज ऐश्वर्य था । दूसरे योगी इस बल को बड़ी भारी कठिन साधना के द्वारा प्राप्त किया करते हैं तब इतने बन पाते हैं ।

बल प्राप्ति का अमोघ साधन

योग दर्शन में भगवान् पतंजलि देव अपने शरीर में अतुल बल बढ़ाने का एक अमोघ साधन बतलाते हैं । साधक योगी पहले ब्रह्मचर्य व्रत आदि का पूर्ण रूपेण पालन करके वह बाद में धारणा, ध्यान, समाधि का निरन्तर अभ्यास करके संयम सिद्धि को प्राप्त करे तब वह अपनी साधना के बल पर अपने शरीर में हाथियों के बलों को उत्पन्न कर सकता है । चीते जैसी स्फूर्ति ला सकता है, बशर्ते उसने अपनी साधना को लगातार निरन्तर एवं आदर पूर्वक दृढ़ता से अभ्यास करके कठिनता से प्राप्त कर पाया हो । भगवान पतंजलि देव बतलाते हैं ।

बलेषु हस्तिबलादीनि ।

यदि योगी बलों के अन्दर संयम करता है तो उसके अन्दर तत्काल हाथी के समान बल बढ़ जाता है । एवं उसका शरीर वज्र के मानिन्द दृढ़ हो जाता है । उसके लिए सकट का तोड़ देना न कुछ के बराबर कार्य है । किन्तु साधन सिद्धों के लिए यह कार्य उनकी अपनी साधना के बल पर होता है और अनादि काल से स्वतः सिद्ध रहने वाले महान् आत्मा श्रीकृष्ण के लिये यह अनायास सहज कर्म था जो उनके ईक्षण मात्र से स्वतः हो गया ।

तृणावर्त का वध एवं लघिमा और गरिमा का प्रयोग

भगवान् के इससे आगे के चरित्रों के अन्दर तृणावर्त राक्षस की कथा है । यह तृणावर्त बात रूपधारी कंस का एक नौकर था जिसने झंझावात का रूप धारण कर गोकुल में बड़ा भारी तूफान मचा दिया । सम्पूर्ण गोकुल गाँव ब्रज रज से भर गया । उस झंझावात में एक दूसरे के शरीर नहीं दिखाई देते थे । महाअन्धकार छा गया था । माता यशोदा ने अपने बाल गोविन्द को एक ओर जमीन पर बिठा दिया था । राक्षस तृणावर्त का दांव लग गया और उनको उठा कर आकाश में ले गया । तृणावर्त के मनोभाव जान कर भगवान् ने अपने आपको रुई के मानिन्द हल्का बना लिया और उसके वेग के साथ-साथ आकाश मे चले गये और तृणावर्त के गले को पकड़े बालक के वेश में छिपे हुए उस दिव्य तेज ने आकाश में पहुँच कर और अपने हाथों में तृणावर्त के गले को पकड़ कर गरिमा के प्रयोग से अपने आपको इतना भारी बना लिया कि श्रीमद्भागवत में व्यास देव जी को यह शब्द कहने पड़े ।

तमश्मानं मन्यमानआत्मो गुरुमत्तया ।
गले गृहीत उत्स्रष्टुं नाशक्नोदद्भुतार्भकम् ॥

अर्थात् उस तृणावर्त राक्षस ने भगवान् श्रीकृष्ण को पत्थर के मानिन्द भारी समझा । भगवान् ने उसके गले को पकड़ रखा था । भारी प्रयत्न करने पर भी वह अपना गला

नहीं छुड़ा सका और अन्त में उसको मृत्यु के मुख में जाना ही पड़ा। जगदात्मा की ये सारी लीलायें योग से ही सम्बन्ध रखने वाली हैं। अन्य जितने अवतार हुए उनमें से किसी ने भी कहीं पर इतने विशेष ऐश्वर्य का प्रदर्शन नहीं किया कि उसके चरित्रों से यौगिक ऐश्वर्य झलक पड़े। भगवान् श्रीकृष्ण का सारा लीला चरित्र योगऐश्वर्य से परिपूर्ण है किन्तु ये सबके सब कार्य उनमें संकल्प मात्र के थे और यही सब उनकी अनादि काल से चलने वाली सिद्धता है। इस छोटे से लेख में उन जगदात्मा के अलौकिक योग ऐश्वर्य को यत्किंचित दिखलाने का प्रयत्न किया है। मैं समझता हूं इन चरित्रों के पढ़ने से हर साधक को योग की उत्कृष्टता का ज्ञान अवश्य हो जायेगा। भगवान् श्रीकृष्ण स्वतः सिद्ध थे किन्तु उन्होंने अपने जीवन में जिस प्रकार अणिमादिक ऐश्वर्य का प्रयोग किया है उस बल की साधना करने वाला योगी भी समय पर प्राप्त कर सकता है। आज भी भारतवर्ष में इस प्रकार के योगी मौजूद हैं जिनकी इस प्रकार की कथायें दंत परम्परा से अवगत होती ही रहती हैं। साधारण साधक समुदाय के अन्दर भी लोग अपनी छोटी मोटी प्राण-शक्ति का प्रदर्शन आज दुनिया में किया करते हैं। सैंकड़ों मन का वजन अपनी छाती पर रखाते हैं बैलों की गाड़ी, ट्रक अपनी छाती पर से उतरवाते हैं। ये उनकी प्राण-शक्ति का थोड़ा-सा प्रदर्शन होता है इसमें संयम बल की कोई भी साधना नहीं किन्तु प्राण पर थोड़ा-सा जय प्राप्त करने पर वे लोग इस प्रकार के अद्भुत कर्म करके दिखाया करते हैं। जब मुझसे यह कोई प्रश्न पूछता है कि परमात्मा की ओर चलने वाले मार्गों में आपको कौनसा प्रिय है तो मुझे उसी समय केवल मात्र लीला तनु धारण करने वाले श्रीकृष्ण की स्मृति हठात् आया करती है और मेरी वाणी से एक ही उत्तर मिलता है। परमात्मा की ओर जाने वाले रास्ते बहुत हैं और मुन्डे मुन्डे मतिर्भिना के नियमानुसार अपने मार्गों को योगी तय भी कर लेता है किन्तु हमारे पूर्वजों ने जिस विद्या का मान किया, श्रीकृष्ण की लीला अभिनय के अन्दर जो विद्या पग-पग पर टपकती है वह पवित्र योग विद्या ही है। इस छोटे से लेख में भगवान् श्रीकृष्ण की चार - पाँच कथाओं की ओर संकेत करके उनके योग ऐश्वर्य को बतलाने का प्रयत्न किया है।

मन

जो रहीम मन हाथ है मनसा कहुँ किन जाय।
जल में ज्यों छाया परी काया भींजत नाय॥

× × ×

रहिमन मनहि लगाय के देख लेउ किन कोय।
नर को बस करिबो कहा नारायन बस होय॥

—रहीम

❋ हंस योग और नाद ❋

[श्री पं० मनोहरलाल शर्मा]

नाद के सम्बन्ध में कुछ अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता है। सूक्ष्म प्राण के उच्चार को नाद कहते हैं। कुण्डलिनी शक्ति से नाद की उत्पत्ति होती है। 'प्रकृतिः—निश्चला परावाग्रूपिणी पर प्रणवात्मिका कुण्डलिनी शक्तिः'। प्रपंचसार तन्त्र विवरण, पटल ३०। निश्चल प्रकृति परावाणी रूप प्रणव स्वरूप वाली कुण्डलिनी शक्ति है, यानी ओंकार, कुण्डलिनी, परावाक् एक ही वस्तु है। शारदा तिलक प्रथम पटल में लिखा है—

सच्चिदानन्दविभवात्
सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादो
नादाद् बिन्दुः समुद्भवः ॥७॥

सच्चिदानन्द कला सहित (सगुण) परमेश्वर से शक्ति उत्पन्न हुई, शक्ति से नाद, नाद से बिन्दु उत्पन्न हुआ। यह नाद शिव शक्त्यात्मक है। नाद सर्वप्रथम परावाणी के रूप में मूलाधार से उठता है। पुनः मणिपुर (नाभिचक्र) में आकर प्राण से संयुक्त होकर पश्यन्ती वाणी के रूप में बदल जाता है। फिर अनाहत (हृदय चक्र) में बुद्धि से संयुक्त होकर मध्यमा वाणी के रूप में परिणत होता है। वही नाद कण्ठ में आकर वर्णात्मिका रूप बैखरी वाणी बन जाता है, जिससे कि—जगद्व्यवहार चलता है। नाद में दो अंश होते हैं—ध्वनि-अंश तथा वर्णांश। प्रत्येक अक्षर (अ से क्ष तक) में दोनों अंश विद्यमान रहते हैं। सब वर्णों का जनक नाद ही है। इसे प्रणव की ध्वनि भी कहते हैं। नाद प्रकाशमय होता है। भगवती कुण्डलिनी से निरन्तर नाद रूप अव्यक्त ध्वनि प्रवाहित होती रहती है, इसे अनाहत ध्वनि अथवा नाद कहते हैं। यह नाद स्पंदन ही वायु रूप प्राण बन जाता है, और हंसः हंसः का अजपा जप करता है।

साधारण ध्वनि और अनाहत ध्वनि में अन्तर समझ लेना चाहिए। जो ध्वनि किसी का आश्रय लेकर उठे, उसे आहत ध्वनि कहते हैं, जैसे ढोल और डंके के संयोग से, वेणु और वायु के संयोग से तार के स्पंदन से उत्पन्न शब्द आहत कहलाता है। आहत शब्द में भिन्न-भिन्न प्रकार की अन्य ध्वनियाँ भी मिश्रित रहती हैं। यह शब्द जड़ होता है। अनाहत ध्वनि प्रकाशमय, नित्य उदित, निरपेक्ष, स्वच्छ चैतन्य होती है। यह प्राणमयी चैतन्य शक्ति का घोष है।

कुण्डलाख्या महाशक्ति
स्तुतीयाप्युपचर्यते।
ध्वनिरूपां यदा स्फोट-
स्त्वदृष्टाच्छिन्नविग्रहात् ॥६२॥
सेसरस्यतिवेगेन
ध्वनिनापूरयञ्जगत्।

स नादो देव देवेशः
प्रोक्तश्चैव सदा शिवः ॥६३॥
(नेत्रतंत्र, २१ अधिकार)

ओंकार की आरोहण क्रम से बारह कलाएं हैं। अ, उ, म, बिन्दु, अर्धेन्दु, निरोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका, समना, उन्मना। इन कलाओं में बिन्दु से लेकर समना कला तक अष्ट वर्ग समष्टि नाद कहलाता है। ये सब ध्वनियां हैं, और उत्तरोत्तर सूक्ष्म होती जाती हैं। उन्मना नाम की शिवरूपिणी परम सूक्ष्म शक्ति है। यह अपने स्वरूप को छिपाने के खेल की इच्छा से व्योम रूप होकर समना नाम से स्फुरित होती है। इससे शून्य नामक व्यापिनी शक्ति उदित होती है। व्यापिनी से भुजंगाकार कुण्डली नाम की महाशक्ति का जन्म होता है। इसके अनन्तर निराकार इष्ट रूप परनादात्मक—प्रकाशानन्दघन शिव से स्फोटात्मक शब्दब्रह्म अपनी ध्वनि से सारे जगत को पूरित करता हुआ अत्यन्त वेग से फैलता है। इस नाद को देवों का स्वामी सदाशिव कहा जाता है। यह परावाक् वाणी रूप उन्मना ही है। यही नाद आगे जाकर पश्यन्ती, मध्यमा, बैखरी वाणी के रूप में पलट जाता है।

हंस, प्राण साधना से नाद सुनाई पड़ने लगता है जिसमें मन लग जाता है। अन्त में प्राण सहित मन नाद में लय हो जाता है, और नाद चेतन शक्ति में। नाद श्रवण के लिए हठ योग में कई उपाय बताये हैं, क्योंकि नादानुसंधान को समाधि का अनन्य साधन माना है। हंसोपनिषद् में कुण्डलिनी जगा कर नाद की अनुभूति का उपाय बताया है। 'अथोनादं आधारत् ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्तं शुद्ध स्फटिक संकाशं स वै ब्रह्म परमात्मा इति उच्यते।' कुण्डलिनी उत्थापन से नाद की अनुभूति होती है। नाद कुण्डलिनी शक्ति से उत्पन्न मूलाधार से उठ कर सहस्रार चक्र तक जाता है। शुद्ध नाद यानी दसवें नाद का वर्ण स्वच्छ स्फीटिक मणि के सदृश होता है। दशम नाद ही ब्रह्म परमात्मा कहा जाता है। हंसोपनिषद् आगे लिखते हैं, स एव जप कोट्यां—नादमनुभवति एवं सर्वं हंसवशात् नादो दशविधो जायते'। वह हर हंस जापी हंस मंत्र के जपकोटि पर पहुँचने से, यानी जब जप बहुत सूक्ष्म हो जाता है तो ध्यान में परिणत हो जाता है और नाद का अनुभव होता है। यहाँ कोटि का अर्थ करोड़ नहीं है अपितु उच्च श्रेणी है। इस प्रकार यह सब यानी ध्यान योग भी हंस साधना के प्रभाव से प्राप्त होता है। यह नाद दश प्रकार का होता है। दश नादों का विधान हंसोपनिषद में दिया है। दसवें नाद यानी मेघनाद का अभ्यास करना चाहिए।

लयावस्था कठिन उपलब्धि है। महान् पुण्य के उदय हुए बिना लयावस्था अथवा ध्यान स्थित प्राप्त नहीं होती, तो भी हंसयोग की साधना से लयस्थिति सिद्ध हो जाती है। इसी को योगियों की संप्रज्ञात समाधि कहते हैं।

दुःखाढ्यं च दुराराध्यं
दुष्प्रेक्ष्यं च दुराश्रयम्।
दुर्लभं दुस्तरं ध्यानं
मुनीनां च मनीषिणाम् ॥२॥
(तेजोबिन्दूपनिषद्)

ध्यान वृत्ति कष्ट साध्य है, इसका स्वायत्त करना कठिन है, ध्यानावस्था में ज्योति का दर्शन कठिन है, इसका आश्रय कठिन है, इसकी प्राप्ति दुर्लभ है, बाह्य जागतिक आसक्तियों को पार करके ध्यान प्राप्ति कठिन है, मननशील व्यक्तियों के लिये भी तथा बुद्धिमानों के लिये भी। ऐसा क्यों है ?

चञ्चलं हि मनः कृष्ण
प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये
वायोरिव सुदुष्करम् ॥
(गीता)

हे कृष्ण ! मन चञ्चल, इन्द्रियों का मथन करने वाला, बलवान और जिद्दी है। इसको काबू में लाना वायु को काबू में लाने के सदृश कठिन है। यह महान् प्राप्ति भी हंस योग साधक को अनायास ही सिद्ध हो जाती है, क्योंकि हंसयोगी को केवल प्राणगीत पर दृष्टि लगानी पड़ती है, करना कुछ नहीं पड़ता। यदि सिद्ध योगी गुरु साधक पर शक्तिपात कर दें, तो लयावस्था बहुत शीघ्र प्राप्त हो जाती है। नादानुभूति न केवल कुण्डलिनी जाग्रत होने पर ही होती है, अपितु प्राणायाम के सर्व नाड़ियों के शुद्ध होने पर भी नाद सुनाई पड़ता है। योग तारावलि में भगवत्पाद कहते हैं—

सरेचपूरैरनिलस्य कुम्भैः,
सर्वासु नाड़ीषु विशोधितासु।
अनाहताख्यो बहुभिः प्रकारै
रन्तः प्रवर्तेतसदानिनादः ॥३॥

रेचक, पूरक तथा कुम्भक प्राणायामों से जब सब वायु वाहिनी नाड़ियाँ मल से शुद्ध हो जाती हैं, तब अनाहत नाम का निनाद बहुत प्रकार से भीतर सुनाई पड़ता है। नाद में चित्त रमण करता है। प्रबोध सुधाकर में भगवत्पाद लिखते हैं—

भेरीमृदंगशंखाद्याऽऽहत
नादे मनः क्षणं रमते।
किं पुनरनाहतेऽस्मिन्मधुम-
धुरेऽखण्डिते स्वच्छे ॥१४६॥

भेरी, मृदङ्ग, शंखादि यन्त्रों से उत्थित आहत नाद में जब मन तत्क्षण रमण करता है तो फिर अनाहत नाद में जो कि मधु-सा मीठा (श्रतिकर्णप्रिय) निरन्तर बहने वाला तथा शुद्ध है, मन क्यों न रमण करेगा अर्थात् वहाँ तो चिपक ही बैठेगा। चित्त जब विषयों से उपरत होता है तो भी नाद श्रवण होता है, यथा—

चित्तं विषयोपरमाद्यथा
यथायाति नैश्चल्यम्।
वंशेखि दीर्घतरः तथा
श्रूयते नादः ॥१४७॥

ज्यों-ज्यों चित्त विषयों से उपरत होता जायेगा, त्यों-त्यों निश्चल होता जायेगा, और वैसे ही फिर वंशी के नाद की भाँति दीर्घनाद सुनाई पड़ेगा, यानी सूक्ष्म से सूक्ष्मतर नाद सुनाई पड़ेगा।

नादाभ्यन्तर्वर्ति ज्योति
यद्वर्तते हि चिरम्।

तत्र मनो लीनं चेन्न पुनः
संसारबन्धाय ॥१४८॥
परमानन्दानुभवात्सुचिरं
नादानुसन्धानात् ।
श्रेष्ठशिवसलयोऽयं सत्स्वन्य-
लयेष्वनेकेषु ॥१४९॥

नाद के भीतर जो ज्योति निवास करती है वहाँ यदि मन चिरकाल तक विद्यमान रहे और लीन हो जाये तो फिर उसको संसार बन्धन में नहीं रहना पड़ता। क्योंकि नादानुसंधान के माध्यम से वह चित्त परमानन्द की अनुभूति करता है। नाना प्रकार के फलदायी लय-विधानों में चित्त लय के लिए नादानुसंधान श्रेष्ठ उपाय है। ॥१४८-१४९॥

न केवल नाड़ी शोधन से ही नाद सुनाई पड़ता है, वरन् आत्म चिन्तन से भी नाद सुनाई पड़ता है। प्रबोध सुधाकर में भगवत्पाद लिखते हैं –

यावत्क्षणं यथार्थं स्वरूप-
परिचिन्तनं क्रियते ।
तावद्दक्षिणकर्णे त्वनाहतः
श्रूयते शब्दः ॥१४४॥

जिस क्षण भी यदि कोई अपने स्वरूप अर्थात् आत्मा का सम्यक् चिन्तन आधे क्षण भी करता है उसी क्षण दक्षिण कर्ण में अनाहत शब्द सुनाई पड़ता है।

अब नाद श्रवण की अवधि बताते हैं। शब्द आकाश का गुण है, जब तक आकाश की भावना बनी रहेगी तब तक शब्द सुनाई पड़ेगा।

तावदाकाशसंकल्पो
यावच्छब्दः प्रवर्तते ।
निःशब्दं तत्परं ब्रह्म
परमात्मेति गीयते ॥१०१॥
यत्किंचिन्नादरूपेण
श्रूयते शक्तिरेव सा ।
यस्तत्त्वांतो निराकारः
स एव परमेश्वरः ॥१०२॥

जब तक अनाहत शब्द का श्रवण होता है तब तक आकाश तत्त्व में मन का अवस्थान रहेगा, क्योंकि शब्द आकाश का धर्म है। नाद का अन्त होने पर यानी निःशब्द अवस्था को ब्रह्म परमात्मा कहा जाता है। उसमें नाद मन सहित लय हो जाता है। जो भी शब्द नाद रूप से श्रवण होता है, वह शक्ति ही है, जिसमें समस्त तत्त्वों का लय हो जाता है वह ही निराकार परमेश्वर है। सर्व वृत्तियों के क्षीण होने पर स्वरूप में अवस्थान ही परम लक्ष्य है।

अब प्राणायाम द्वारा नाड़ी-शोधन की कष्ट साध्यता बताते हैं। जब तक सुषुम्ना नाड़ी में मल रहेगा तब तक उसमें से प्राण संचार नहीं हो सकेगा। प्राणायाम द्वारा नाड़ी शोधन होने पर नाद सुनाई पड़ेगा। हठ योग प्रदीपिका में लिखते हैं—

चले वाते चलं चित्तं
निश्चले निश्चलम् भवेत् ।
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति
ततो वायुं निरोधयेत् ॥२/२॥

मलाकुलासु नाड़ीषु
मारुतो नैव मध्यगः।
कथं स्यादुन्मनीभावः
कार्यसिद्धिः कथं भवेत् ॥२/४॥
प्राणायामं ततः कुर्यान्नित्यं
सात्त्विकयाधिया।
यथा सुषुम्नानाड़ीस्था
मलाः शुद्धिं प्रयांति च ॥२/६॥
यदा तु नाडीशुद्धिः
स्यात्तथा चिह्नानि बाह्यतः।
कायस्य कृशता कान्तिस्तदा
जायते निश्चितम् ॥२/१९॥
यथेष्टधारणं वायोर
नलस्य प्रदीपनम्।
नादाभिव्यक्तिरारोग्यं
जायते नाड़ी शोधनात् ॥२/२०॥
(हठयोग प्रदीपिका)

प्राण चलायमान होने से चित्त चलायमान होता है, प्राण निश्चल होने पर मन भी निश्चल हो जाता है। मन स्थिर होने पर योगी स्थाणु की भांति स्थिर हो जाता है। इसलिए प्राण जय करना चाहिए। नाड़ियों में मल भरने से प्राण सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश नहीं पा सकता, तब किस प्रकार उन्मनी अवस्था प्राप्त होगी, और कार्य सिद्धि (जीवन्मुक्ति) होगी? इसलिए सुषुम्ना में प्रविष्ट मल परिशोधन के लिये शुद्ध बुद्धि से प्राणायाम नित्य करना चाहिए। नाड़ी शुद्धि के चिह्न बताते हैं—शरीर का पतला और चमकदार होना, प्राणायाम से जठराग्नि का प्रदीपन, नाद का आविर्भाव तथा आरोग्यता प्राप्ति।

प्राणायाम से नाड़ी शोधन कष्टसाध्य है। इसके लिए तीन महीने तक अस्सी-अस्सी प्राणायाम प्रातः, मध्याह्न, सायंकाल तथा अर्धरात्रि में (यानी ३२० प्राणायाम) नित्य करने होंगे। साधारणतः इसमें सात-आठ घण्टे लगते हैं। फिर घी दूध का भोजन चाहिए। परंतु हंसयोग की साधना से नाड़ी अनायास ही शुद्ध हो जाती है और नाद श्रवण गोचर होता है। हंस योगी भी साधारण से प्राणायाम का आश्रय ले सकता है। नादबिन्दूपनिषद् में लिखा है—

यत्र कुत्रापि वा नादे
लगति प्रथमं मनः।
तत्रैव सुस्थिरीभूय तेन
सार्धं विलीयते ॥३८॥
मकरन्दपिबन्भृंगो
गन्धान्नापेक्षते यथा।
नादासक्तं तथा चित्तं
विषयं न हि कांक्षति ॥४२॥
नादश्रवणतः क्षिप्रमन्त-
रंग-भुजंगमः।
विस्मृत्य विश्वमेकाग्रः
कुत्र चिन्नहि धावति ॥४३॥
मनोमत्त गजेन्द्रस्य
विषयोद्यान चारिणः।

नियंत्रणे समर्थोऽयं

निनादनिशितांकुशः ॥४४॥

जहाँ भी सूक्ष्म अथवा सूक्ष्मतर नाद में जब मन लग जाता है तो वहीं स्थिर होकर उसी के साथ लय हो जाता है। जैसे पुष्प के रस को पीता हुआ भंवरा गन्ध की अपेक्षा नहीं करता, उसी प्रकार नाद में आसक्त हुआ चित्त विषयों की इच्छा नहीं करता। अनाहत नाद के श्रवण से शीघ्र ही मन रूपी सर्प सर्व विश्व का विस्मरण करके एकाग्र हुआ किसी विषय की ओर नहीं दौड़ता। मन रूपी मस्त हाथी को, जो कि विषय रूपी बगीचे में भ्रमण करता है, रोकने में नाद रूपी तीक्ष्ण अंकुश समर्थ है।

नाद श्रवण हंसजापी के साधना-पथ में ही आता है उसका आश्रय लेकर परम गति को प्राप्त होता है। हठ योग में नादानुसंधान को लय का मुख्य साधन कहा है। नादानुसन्धान को अपनाने वाले योगियों की आरंभ, घट, परिचय तथा निष्पत्ति चार अवस्थायें कही हैं। पहली तीन अवस्थाओं में ब्रह्मग्रंथि, विष्णु ग्रंथि, रुद्र ग्रंथि भेदन होती हैं। निष्पत्ति अवस्था सिद्धावस्था कही गई है। इस पर अधिक कहना अनावश्यक है, क्योंकि हमारा विषय हंसोपनिषद् है।

अब नाद के भेदों पर कुछ कहते हैं। हंसोपनिषद में नाद के दश भेद कहे हैं—१. चिणि, २. चिञ्चिणी, ३. घंटानिनाद, ४. शंखनाद, ५. तन्त्रीनाद, ६. तालनाद, ७. वेणुनाद, ८. मृदंग नाद, ९. भेरीनाद, १०. मेघनाद। ये उत्तरोत्तर अधिक सूक्ष्म है। प्रथम ९ नादों को त्याग कर दशवें मेघनाद के श्रवण का अभ्यास करे।

'तस्मिन् मनो विलीयते'। उसमें मन लय हो जाता है। ये ध्वनियाँ नादानुसारी हैं क्योंकि ध्वनियाँ अस्पष्ट होती हैं, और उनकी सही अभिव्यक्ति शब्दों में नहीं की जा सकती।

स्वच्छन्द तन्त्र में कहा है कि नाद, जोकि स्वयं अव्यक्त और ध्वनि रूप है, आठ भेदों में व्यक्त होता है ऐसा कहा गया है—

अष्टधा स तु देवेशि

व्यक्तः शब्द प्रभेदतः।

घोषो रावः स्वनः शब्दः

स्फोटाख्यो ध्वनिरेवच ॥९॥

झांकारोध्वङ्कृतश्चैव

अष्टौ शब्दाः प्रकीर्तिताः।

हे देवताओं की स्वामिनि! नाद के आठ व्यक्त भेद हैं—घोष, राव, स्वन, शब्द, स्फोट, ध्वनि झंकार तथा ध्वङ्कृति (मेघध्वनि)। ये आठ प्रकार के नाद उस नवम महानाद के भेदमात्र हैं जो सर्वत्र व्यापक रूप से विद्यमान है।

नादानुसन्धान स्थूल बुद्धि वालों के लिये भी एक स्वतन्त्र साधन है—

अशक्य-तत्त्वबोधानां

मूढानामपि संमतम्।

प्रोक्तं गोरक्षनाथेन

नादोपासनमुच्यते ॥

मूढ़ बुद्धि होने के कारण जो ब्रह्म विचार में असमर्थ हैं, उनके लिए भी गुरु गोरक्षनाथ ने नादानुसन्धान अनुकूल साधन कहा है।

फिर विद्वानों के लिये तो कहना ही क्या है। अतः नाद की उपासना (अनाहत ध्वनि की साधना) कही जाती है।

चन्द्रकापालिक द्वारा पूछा जाने पर योगेश्वर घेरण्ड ने घेरण्ड संहिता नामक ग्रन्थ के पाँचवें उपदेश में नाद श्रवण विधि, नाद भेद तथा नादानुसंधान का फल बताया है। उसी ग्रन्थ से उद्धृत करके लिखते हैं—

अर्धरात्रिगते योगी
जन्तूनां शब्द वर्जिते।
कर्णौ पिधाय हस्ताभ्यां
कुर्यात् पूरक-कुम्भकम् ॥७७॥
शृणुयाद् दक्षिणे कर्णे
नादमन्तर्गतं शुभम्।
प्रथमं झिञ्झानादं च वंशी
नाद ततः परम् ॥७८॥
मेघ-झर्झर-भ्रमरी
घंटाकास्यं ततः परम्।
तुरी-भेरी-मृदंगादि-
निनादानक-दुन्दुभिः ॥७९॥
एवं नानाविधं नादं
जायते नित्यमभ्यसात्।
अनाहतस्य शब्दस्य
तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः ॥८०॥
ध्वनेरन्तर्गत-ज्योति
ज्योतिरन्तर्गतं मनः।
तन्मनो विलयं याति
तद् विष्णोः परमं पदम् ॥८१॥

अर्थ—आधी रात बीतने पर जब किसी जन्तु का शब्द सुनाई न दे, उस काल एकान्त स्थान में योगी अपने दोनों हाथों से दोनों कानों को बन्द करके पूरक कुम्भक का अनुष्ठान करे। ऐसा करने पर योगी दाहिने कान में नाना प्रकार के शुभ भीतर के नादों को श्रवण करे। अब नाद की भिन्न-भिन्न ध्वनियाँ बताते हैं। पहले झींगुर के शब्द जैसी ध्वनि, फिर वंशी जैसी ध्वनि, फिर मेघ, झर्झर बाजे की ध्वनि, फिर भौंरे के गुञ्जार जैसी ध्वनि फिर कांसे के पात्र, तुरही, भेरी, मृदंग आदि के शब्द, आनक (नोबत बाजा) दुन्दुभि के नाद जैसा शब्द सुनाई पड़ता है। इस प्रकार नानाविधि नाद नित्य अभ्यास से सुनाई पड़ते हैं। अब नाद का रहस्य खोलते हैं। अनाहत शब्द की जो ध्वनि है, उस ध्वनि के भीतर एक मोहक प्रकाश होता है, उस ज्योति के भीतर प्रविष्ट मन लय को प्राप्त होता है, वही ज्योति ही विष्णु (आत्मा) का परम पद धाम है।

नादबिन्दूपनिषद् में प्रणव से नाद की उत्पत्ति बताई है। प्रणव दो प्रकार का होता है। पर-प्रणव, परब्रह्म तथा अपर-प्रणव, अपर ब्रह्म यानी शब्द ब्रह्म। पहले बता चुके हैं कि प्रणव और कुण्डलिनी और शक्ति एक ही वस्तु के नाम हैं, इसे परा वाणी भी कहते हैं। ब्रह्म-प्रणव शब्दातीत है, अपरब्रह्म प्रणव शब्द-ब्रह्म है।

ब्रह्म प्रणव संधानं नादो
ज्योतिर्मयः शिवः।
स्वयमाविर्भवेदात्मा
मेघापायेंऽशुमानिव ॥३०॥

सिद्धासने स्थितो योगी
मुद्रां संधाय वैष्णवीम् ।
शृणुयाद्-दक्षिणेकर्णे
नादमन्तर्गतं सदा ॥२१॥

अभ्यस्यमानो नादोऽयं
बाह्यमावृणुते ध्वनिः ।
पक्षाद्विपक्षमखिलं
जित्वा तुर्यं पदं व्रजेत् ॥२२॥

श्रूयते प्रथमाभ्यासे
नादो नानाविधो महान् ।
वर्धमाने तथाभ्यासे
श्रूयते सूक्ष्म-सूक्ष्मतः ॥२३॥

आदौ जलधि-जीमूत
भेरी-निर्झरसंभवः ।
मध्ये मर्दलशब्दाभो
घंटा-काहलजस्तथा ॥२४॥

अन्ते तु किंकणी-वंश-
वीणा-भ्रमरनिःस्वनः ।
इति नानाविधा नादाः
श्रूयन्ते सूक्ष्मसूक्ष्मतः ॥२५॥

अर्थ—नाद में दो अंश विद्यमान होते हैं—एक अंश ध्वनि और एक अंश प्रकाश। उसमें प्रकाशांश तो स्वयं आत्मा है और ध्वनि उसका आवरण, आच्छादक उपाधि है। ब्रह्म-रूप प्रणव का ध्यान करना चाहिए। इससे नादरूप ज्योतिर्मय सदा शिव भगवान जो कि स्वयं अपनी आत्मा हैं, का प्राकाट्य होगा। कब ? जैसे बादल हटने पर महाप्रकाशमान सूर्य का दर्शन होता है, वैसे ही आकाशतत्त्व समद्भूत शब्द से उपहित नाद में से शब्दांश दूर होने पर ज्योतिर्मय रूप परमात्मा प्रकट होता है। इसकी साधना किस प्रकार होती है ? सिद्धासन पर बैठ कर योगी वैष्णवी मुद्रा (हाथों से कानों को बन्द करना) जमा ले और दक्षिण कर्ण में भीतर के नाद को सुने (बाहर के शब्द को न सुने)। अभ्यास किया हुआ यह नाद ब्रह्म का वरण कर लेगा। एक दो पक्ष में ही ध्वन्यंश को जीत कर योगी, तुर्यपद, लय को प्राप्त होगा। अभ्यास के आरम्भ में नाना प्रकार का महान् यानी स्थूलनाद सुनाई पड़ता है। इसके पश्चात् अभ्यास के बढ़ जाने पर सूक्ष्म और अति सूक्ष्म नाद सुनाई पड़ता है। आरम्भ में समुद्र की गर्जना, बादल की गर्जना, भेरी और निर्झर बाजे से उत्पन्न शब्द की भांति नाद सुनाई पड़ता है। इसके पश्चात् श्रवण वृत्ति सूक्ष्म होकर सूक्ष्म नाद का श्रवण करती है। मर्दल (एक प्रकार का ढोल) के शब्द की भांति, घण्टा, काहल (झांझ) की ध्वनि के सदृश सूक्ष्म नाद की ध्वनि होती है। अन्त में सूक्ष्मतर नाद यथा क्षुद्रघंटिकाओं, वंशी, वीणा, भ्रमर की गुनगुन ध्वनि के सदृश सूक्ष्मतर ध्वनि को सुनता है। (चूंकि नाद की ध्वनि अस्पष्ट होती है अतः भिन्न-भिन्न आचार्यों ने अपने-अपने अनुभव के आधार पर ध्वनि अनुसारी भिन्न-भिन्न शब्दों से दृष्टान्त दिये हैं)।

इस भांति नाना प्रकार के सूक्ष्म अति सूक्ष्म नाद सुनाई पड़ते हैं। परन्तु यह नाद सूक्ष्म होते-होते अन्त में निःशब्द होकर ज्योतिरूप हो जाता है। मन और प्राण दोनों का ही लय हो जाता है।

जहाँ तक नाद है, वहीं तक आकाश है, वहीं तक शब्द है। जहाँ नाद का अन्त है, वहीं आकाश का अन्त है और वहीं शब्द का। परमात्मा निःशब्द पद है, वही उन्मनी अवस्था है।

सशब्दश्चाक्षरे क्षीणे
निःशब्दं परमं पदम्।
सदानादानुसंधानात्संक्षीणा
वासना तु या ॥४९॥
निरञ्जने विलीयेते
मनोवायू न संशयः।
नाद कोटि सहस्राणि
बिन्दु कोटि शतानि च ॥५०॥
सर्वे तत्र लयं यान्ति
ब्रह्मप्रणवनादके।
सर्वावस्था-विनिर्मुक्तः सर्व
चिन्ता विवर्जितः ॥५१॥

अर्थ—अक्षर शब्दब्रह्म के क्षीण होने पर निःशब्द यानी मौन परमात्मा पद प्राप्त होता है। चित्त में विक्षेप उत्पन्न करने वाली वासना नाद के निरंतर अभ्यास से क्षीण हो जाती है, वासना के अभाव में अतरंगित मन नादान्तर्गत ज्योति में लय हो जाता है। सर्वोपाधिरहित निरंजन निर्गुण निःशब्द ब्रह्म में मन और वायु (प्राण) दोनों ही लय हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं करना न केवल मन और प्राण ही लय होते हैं, अपितु करोड़ों सहस्र प्रकार के घनघोर नाद और करोड़ों शत प्रकार के बिन्दु भी निःशब्द पद में लय हो जाते हैं। योगी उस स्थिति को पाकर सब अवस्थाओं—जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति से मुक्त और सब चिन्ताओं से रहित हो जाता है।

दृष्टिः स्थिरा: यस्य विना सदृश्यम्,
वायुः स्थिरो यस्य विना प्रयत्नम्।
चित्तं स्थिरं यस्य विनाऽवलम्बम्,
स ब्रह्म तारान्तरनाद रूपः ॥५६॥
(नादबिन्दूपनिषद्)

जिस योगी की दृष्टि बिना आकार का आश्रय लिए ही स्थिर है, जिसका प्राण बिना प्रयत्न के ही स्थिर है, जिसका चित्त बिना आधार के ही स्थिर है, वह साक्षात् तारक ब्रह्म अन्तरनाद रूप ही है। श्री विज्ञान भैरव ग्रंथ में भी नादानुसंधान से परब्रह्म की प्राप्ति कही है। भगवान् भैरव की वाणी भी अनोखी ही है—

अनाहते पात्रकर्णे—
भग्नशब्दे सरिद्-द्रुते।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः
परंब्रह्माधिगच्छति ॥३८॥

अर्थ—कर्ण ही जिसको धारण करने वाला पात्र है अर्थात् कानों में सुनाई देने वाला (बाहर सुनाई न देने वाला) अनाहत शब्द, यानी नित्य उदित नाद, नदी के प्रवाह की भाँति द्रुतगामी तथा अखण्डित, विच्छेद रहित गति से प्रवाहित होता रहता है। इसी को शब्दब्रह्म कहते हैं। शब्द ब्रह्म में प्रवीण यानी शब्द ब्रह्म को पार करने वाला ही निःशब्द परम ब्रह्म को प्राप्त करता है। शब्द जाल से अविमुक्त परम ब्रह्म को नहीं पा सकता।

हंस याग की महिमा आपको अवगत हो गई होगी। इससे प्राणायाम की सिद्धि, नाड़ियों का शोधन, कुण्डलिनी जागरण, आरोग्यता, देह कान्ति, लय तथा जीवन्मुक्ति सभी कुछ प्राप्त होते हैं। —क्रमशः

श्री गुरुदेव के चरण कमलों के सम्पर्क की कुछ हृदयग्राही स्मृतियां

(श्री प्रो० ऋषिराम जी एम. ए. दिल्ली)

हर मनुष्य के जीवन-पथ पर कभी-कभी ऐसे मोड़ आते हैं जहाँ अपनी बुद्धि एवं पुरुषार्थ काम नहीं करता और कोई दैविक-शक्ति ही समय तथा संस्कारानुसार हाथ पकड़ कर ठीक पथ पर चला देती है। ठीक ऐसी ही दैविक घटना मेरे अपने जीवन में १९५५ में घटित हुई। कुछ पारिवारिक एवं व्यक्तिगत परिस्थितियों के कारण मन अतीव दुःखी रहने लगा था। आँखों में प्रायः अश्रु उमड़े रहते थे। जब स्नानार्थ मैं स्नानागार में जाता वहां एकांत पाकर घंटा भर के लगभग रोता और फर्श पर माथा रगड़ कर प्रार्थना किया करता था: "प्रभो! रक्षा करो" यहां तक कि उस समय मेरे माथे पर तिलक की भाँति इसी रगड़ का चिह्न भी बन गया था। मुझे क्या पता था कि 'प्रभु प्रभु' पुकार कर जो मैं प्रार्थना करता हूं उसके फलस्वरूप वास्तव में किसी दिन श्री महाप्रभु के ही पावन चरण-कमलों में इस पतित को आश्रय मिलेगा।

अनंत श्री गुरुदेव महाराज ने एक बार फरमाया था कि जब-जब भी किसी को उत्कट जिज्ञासा हो जाती है गुरु दर्शन की सद्गुरु तब स्वयं ही उसे ढूंढ लेते हैं और आश्रय दे देते हैं। ठीक ऐसा ही मेरे साथ हुआ। उसी वर्ष सितम्बर मास में हिन्दू कालेज के कुछ नये बंगले बन कर तैयार हुए थे और इनमें से एक मुझे मिला। एक दिन शाम को मैं आगे खुले मैदान में विचारमग्न बैठा था कि सहसा मेरी दृष्टि सामने के विश्वविद्यालय मार्ग पर गई। क्या देखता हूँ कि मेरे पुराने मित्र और सखा पं० मनीराम-जी, साइकिल पर जा रहे हैं। कुछ वर्ष पूर्व यह महानुभाव दिल्ली छोड़ कर घर लाडवा लौट गये थे और डी. ए. वी. हाई स्कूल सादाबाद के मुख्याध्यापक भी हो गये थे। मैंने उनको देखा और वे मुझे देखकर साइकिल से उतर गए। बातचीत के बीच उन्होंने बताया कि वे दिल्ली लौट आये हैं और अब फिर यहाँ ही रहेंगे। जब उन्होंने मुझसे पूछा मैं यहां कैसे बैठा हूँ मैंने कहा 'यह मकान मुझे मिला है।' काफी समय तक एक-दूसरे के विषय में पूछताछ होती रही। पता चला कि उनका विचार दिल्ली में एक 'योगाश्रम' स्थापित करने का है। इस पर मुझे हँसी आ गई क्योंकि वे आर्यसमाजी रहे थे और आर्य-समाज के कुतर्कवाद से मुझे सदा ही घृणा रही थी। मैं भक्ति मार्ग में विश्वास रखता था। इस पर उन्होंने कहा: नहीं, ऋषिराम-जी, मैं अब आर्यसमाजी नहीं रहा।" मैं सुन कर कुछ चकित-सा हो गया। अवश्य इनके जीवन में कुछ परिवर्तनशील घटना हुई होगी

जिसने इन्हें बदल दिया है। उन्होंने बताया "मुझे एक परम योगी सद्गुरु के दर्शन हुए हैं और मैंने उनके पावन चरणों का आश्रय लिया है। अब मैं उनका ही प्रचार करना चाहता हूँ। श्री वात्सल्य निधि सद्गुरुदेव महाराज की ही प्रेरणा रही होगी कि मैंने उनसे प्रार्थना की कि मुझे भी उनका दर्शन करने का सौभाग्य प्रदान करें। पूछा कैसे मैं दर्शन कर सकता हूँ? मैंने उनको अपना मानसिक दुःख भी बताया। उन्होंने वचन दिया कि शीघ्र ही वे मुझे अपने गुरुदेव के दर्शन करायेंगे। मेरा यह निवास स्थान दिल्ली नगर की सुविख्यात पहाड़ी के ठीक नीचे जंगल में था। एकदम एकान्त। मैंने उनसे आग्रह किया कि महाराज अब भी दिल्ली पधारें मेरी कुटिया को ही अपने पावन चरण-कमलों की धूल से पवित्र करें। पंडित जी ने तुरन्त ही श्री महाराज जी को दिल्ली पधारने के लिए पत्र द्वारा आग्रह किया होगा।

इसी क्रम में एक दिन ब्रह्मचारी (अब गृहस्थी) ब्रज किशोर से भेंट हुई और उसने बताया कि श्री महाराज दो-तीन दिन में दिल्ली पधार रहे हैं। मन में हलचल उत्पन्न हो गई। मेरे जीवन में कुछ होने जाने वाला है मैंने ऐसा अनुभव किया। जिन्होंने एक आर्यसमाजी को भक्ति-मार्ग पर चला दिया उनके दर्शन होने जा रहे हैं। उत्सुकता और मनोवेग के कारण नींद भूख बन्द सी हो गई। बाहर का कमरा मैंने श्री महाराज के लिए ठीक करवा दिया और जिस प्रकार भीलनी ने राम की प्रतीक्षा की थी मैं भी उनके दर्शन की पुण्य घड़ी की प्रतीक्षा करने लगा।

एक दिन प्रातः ही ब्रजकिशोर जी दौड़े आये और कहा—"गुरुजी आये हैं", कहाँ हैं?" मैंने पूछा। "बाहर खड़े हैं।" मैं जैसे ही बैठा, नंगे पाँव बाहर दौड़ पड़ा। बाहर टैक्सी खड़ी थी और श्री महाराज अपने सीधे-सादे भेष में एक ओर खड़े थे। मैंने सोचा था कि गुरु महाराज साधु भेष में होंगे, बड़ी-बड़ी जटाएँ आदि भी होंगी। चुपके से पूछा "कहाँ हैं गुरुजी?" पंडितजी ने महाराज की ओर संकेत किया। मन जैसे डूब-सा गया। बड़ी निराशा-सी हुई। यह क्या योगी होंगे?" अपने भावों को दबा कर शिष्टाचार रूप से महाराज जी को प्रणाम किया और सत्कार सहित कमरे तक लाकर आसन पर विराजमान कराया। पंडित जी और ब्रजकिशोर की भाँति मैं भी उनके सामने नीचे बैठ गया। मुझे क्या पता था उस समय क्या होता है गुरु और क्या है उनकी महिमा। स्वयं साक्षात् प्रभु स्वय घर पर पधारें और एक मूर्ख अज्ञानी की आँख उन्हें पहिचान भी न सके! मेरे मन में जिज्ञासा हुई थी कि किसी सद्गुरु के दर्शन हों जो शान्ति दे सकें। प्रभु से रक्षा की भीख महीनों माँगी थी। और उस जिज्ञासापूर्ति के हेतु जब स्वयं प्रभु कुटिया पर पधारे और साक्षात् वात्सल्यपूर्ण हृदय को लेकर मेरे सम्मुख विराजमान थे, मैं उनकी महिमा को जान भी न सका। यह है निपट अज्ञान जिसके कारण इस जगत के असंख्य प्राणी अज्ञानान्धकार में भटक-भटक कर दुःख पा रहे हैं।

प्रभु का शुभागमन मेरे नये जीवन की कहानी का प्रथम परिच्छेद था। यहीं से ही जीवन में एक नया मोड़ आया आया। सायंकाल आरती हुई। दिल्ली निवासी

श्री महाराज जी के कुछ शिष्य इसमें शामिल हुए। मैं भी औरों की देखा-देखी शामिल हुआ परन्तु मुझे कुछ बात जंची नहीं। महाराज जी दो-चार दिन मेरी कुटिया पर ठहरे। मैं कालेज जाता और फिर वापिस आकर श्री चरणों में बैठ जाता। मेरे मन में जो भाव उत्पन्न होते वे उनको ही लेकर चर्चा शुरू करते और उपदेश देते। इस प्रकार चमत्कार होने लगा। मैं कालेज जाता तो श्री महाराज-जी की एक विराट मूर्ति, परम गम्भीर मुद्रा में मेरे समक्ष उपस्थित रहती और ये शब्द मन को सुनाई देते—"ऋषिराम! ये ही तुम्हारे गुरु हैं। तुम्हारी प्रार्थना के उत्तर में तुम्हारा उद्धार करने पधारे हैं।" रात को सोते और दिन में जागते हर समय यह ही आभास होता ये ही मानसिक कानों को सुनाई पड़ता। मन धीरे-धीरे श्री चरणों पर झुकने लगा। उनकी अपार कृपा।

दिल्ली में मेरे सम्बन्धी ला० हरजीवन एडवोकेट हैं। उमर में मेरे से ११-१२ वर्ष बड़े हैं। वे स्वर्गीय मेहर बाबा के भक्त हैं। मेरा उनका काफी उठना बैठना रहता था मैंने उनको भी श्री गुरुदेव के दर्शन हेतु निमन्त्रित किया। दूसरे दिन वे भी सायंकाल आरती में शामिल हुए। आरती के बाद प्रवचन हुआ। उसके बीच मैंने देखा कि ला० हरजीवन लाल की आँखों से अश्रुधारा बह रही है और उनका सारा कमीज वक्ष-स्थल पर गीला हो गया है। श्री महाराज जी के विश्राम करने के बाद हम दोनों अलग कमरे में रात के २ बजे तक बैठे बातें करते रहे। उनकी अश्रुधारा अब भी प्रवाहित थी। बड़े गम्भीर स्वर में मुझसे बोले—"लाला ऋषिराम, ये Perfect master अर्थात् पूर्ण सर्वशक्तिमान सद्गुरु हैं। तुम निःसंकोच इनकी शरण ले लो। २ मास से मेरा मन-प्रवाह अवरुद्ध था इनके दर्शन करने पर पहिले तो मुझे भी कुछ जंचा नहीं था, परन्तु प्रवचन के बीच मेरे हृदय का मल धुल गया और जो गतिरोध हो गया था वह हट गया। ये पूर्ण शक्तिमान् गुरु और सर्वशक्तिमान गुरु के शिष्य और उनके समान ही हैं।"

उनके वचन सुनकर परम आनन्द मिला। फिर भी मेरा मन पापी ही रहा। मैं सोचता—"कहीं धोखा न हो जाये। गुरु कोई वस्त्र तो है नहीं कि ठीक न बैठने पर बदल डालो। कहीं ऐसा न हो कि बाद में पछतावा हो और मूर्ख बनूं"। इस प्रकार कुछ और समय मूर्ख बना रहा। पंडित जी से बात हुई, होती ही रहती थी। उन्होंने कहा—"ऋषिराम जी मैंने आँखें खोल कर इनको गुरु धारण किया है। आप निश्चिन्त रहें"।

अगले दिन मैं श्री चरणों में बैठा मन ही मन उतार-चढ़ाव कर रहा था। महाराज जी ने फरमाया—"कोई शंका?" मैंने उत्तर दिया 'महाराज जी एक शंका केवल शेष है। आप जो जाति भेद करते है और इतना छूत-छात, यह समझ में नहीं आता।" इस शंका का समाधान आपने शास्त्रीय और योग सिद्धान्तों के आधार पर प्रशान्त महासागर की गरिमा के साथ किया और मैं काफी संतुष्ट हो गया। उसी दिन पिछले पहर महाराज जी कहने लगे—"अच्छा ऋषिराम, अब हम वापिस जाना चाहते हैं। मैंने और

ठहरने का आग्रह किया। श्री प्रभु जी ने कहा 'यदि तुम दीक्षा लोगे तो हम एक-दो दिन और ठहर जायेंगे, अन्यथा चलना चाहेंगे। यदि कोई शंका हो निवारण कर लो।" सहसा मेरे मुख से निकल पड़ा—"महाराज जी कल दीक्षा दे दीजिये।" भला जिस कार्य के लिए वे स्वयं पधारे थे, अर्थात् मेरा उद्धार करना उसको अधूरा छोड़ कर कैसे जाते। यह दैविक शक्ति ही जीवन के मोड़ पर खड़ी पथ-प्रदर्शन कर रही थी। अगले दिन मेरे सौभाग्य का उदय हुआ और श्री महाराज जी ने मेरे कल्याणार्थ मुझे दीक्षित किया। उसके बाद २-३ दिन और सद्गुरुदेव कुटिया पर ठहरे और एक दिन प्रातः वापिस पुण्यधाम सवाई चले गये।

जीवन में एक उथल-पुथल मच गई। मेरे अन्दर एक उन्माद-सा हो गया। उठते-बैठते हर समय उनका ही ध्यान रहता। उनकी परम कृपा का सागर उमड़ा पड़ रहा था। मैंने अपनी कुटिया को महाराज का आश्रम ही समझ लिया और एक सेवक की तरह ही मैं उनके ध्यान में मग्न रहने लगा। एक नये आनन्द और उल्लास की अनुभूति होने लगी। इस प्रकार एक नये जीवन का श्री गणेश हुआ।

आगे जो कुछ हुआ उसका उल्लेख आज्ञा मिलने पर फिर कभी करूंगा। यहाँ यह कह देना चाहता हूँ कि मेरे मन में एक विचित्र विश्वास उत्पन्न हो गया और प्रभु-आश्रित हो मैं सर्वथा निर्भीक हो गया, और आज तक हूँ। परन्तु अपने अज्ञान के कारण अतुल वात्सल्य और कृपा पाने पर भी मैं उनकी महिमा न जान सका, गुरु महिमा के रहस्य से अनभिज्ञ रहा। उनकी कृपाएं किस प्रकार होती हैं इस समय समझ न सका, क्योंकि समझ थी ही नहीं—ठोकरें लगे बिना मनुष्य मनुष्य नहीं बनता। मेरे संस्कार बड़े क्लिष्ट थे। मुझे झंझोरे बिना उनका टलना कठिन था। मुझे भी श्री महाराज ने, जिस प्रकार धोबी कपड़ों को पत्थर पर कूटता है, उनकी मैल हटाने के लिए, कूट-पीट कर रख दिया। बड़े-बड़े तूफान जीवन सागर में आये, नय्या डगमगाई, परन्तु उनका परम कृपाहस्त मेरे सर पर रहा। समय बीत गया, संस्कार टल गए, नय्या तट पर आ पहुँची और जब यह भयानक सपना समाप्त हुआ। आँखें मलता हुआ मैं जागा अब कुछ आँखें खुलीं और थोड़ा-थोड़ा ज्ञान हुआ कि जो निधि मुझे अपने सहस्रों गुरु भाइयों की भाँति उपलब्ध हुई थी साधारण नहीं है, संस्कार तो भुगतने ही पड़ते हैं। "अवश्यमेव भोक्तव्यम् कृतम् कर्म शुभाशुभम्" परन्तु जब कोई सर्वशक्तिमान सद्गुरु पथ निर्देशन करते हैं तो भक्त की क्षति तो कुछ हो ही नहीं पाती, कटु अनुभवों में भी एक मिठास उत्पन्न हो जाती है और सद्गुरु की किस प्रकार कृपा होती है उसका कुछ ज्ञान होने लगता है। चौदह वर्ष मुझे श्री चरणों में आए हो गये हैं। परन्तु उस प्रारंभ के उन्माद और आज के उन्माद में भारी अंतर है। उस समय यह एक बचपन का सा उन्माद था। आज का नशा गहरा और ठोस है। एक उर्दू कवि ने बड़े मार्मिक शब्दों में कहा है—

'इंतहाए नशा से आता है होश, होश है इंतहाए नशा' अर्थात् जब शिष्य का भक्ति-

उन्माद गहरा हो जाता है उसको होश आता है अर्थात् ज्ञान होता है। और जो होश में अपने को समझते हैं वे शराबी की भाँति नशे अर्थात् अज्ञान अंधकार में होते हैं। ठोकरें खाकर उनके स्वरूप को मैं आज कुछ कुछ पहिचानने लगा हूं। पूरी पहचान हो जाने पर तो मुक्ति-द्वार के पट ही खुल जाते हैं। परन्तु आज मेरे लिए गोस्वामी तुलसीदासजी के शब्द सर्वथा सार्थक हो गये हैं—श्री गुरु चरणों की महिमा का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है—

"बड़ भाग मिलहिं जासु"

हम सहस्त्रों गुरु भाइयों का परम सौभाग्य है कि आज के युग में भी हमें इस परम विभूति के दर्शन हो रहे हैं और इनकी अपार कृपा और वात्सल्य का जो प्रबल प्रवाह बहता रहता है उसमें स्नान कर अपना उद्धार कर पाने का अवसर हमें मिल रहा है। इस अवसर से पूरा-पूरा लाभ उठाना काम हमारा है, उनकी कृपा तो है ही और सदैव बनी रहेगी।

(शेष फिर)

—* क्या करना चाहिए *—

(समर्थ रामदास के उपदेश)

प्रातःकाल उठकर कुछ पाठ और परमात्मा का यथाशक्ति स्मरण करना चाहिए फिर ऐसी दिशा में जाना चाहिए जिसका किसी को पता न चले और वहां निर्मल जल से शौच तथा आचमन आदि करना चाहिए। मुख मार्जन, प्रातः स्नान, संध्या तर्पण, देवार्चन और अग्नि की सांगोपांग उपासना करनी चाहिए। इसके बाद कुछ फलाहार करके सांसारिक कार्यों में लगना चाहिये और उत्तम बातों से सब लोगों को प्रसन्न रखना चाहिये। अपने-अपने व्यापार में सब को सावधान रहना चाहिए। दुश्चित्त रहने से लोग धोखा खाते हैं। दुश्चित्त तथा आलसी रहने से यह प्रत्यक्ष फल देखने में आता है कि मनुष्य चूक जाता है और धोखा खाता है। कहीं कोई बात भूल जाता है तो कहीं कोई। वस्तु छोड़ या खो देता है और तब उसके लिये दुःखी होता है। इसलिये मन को सदा सावधान और एकाग्र रखना चाहिये तभी भोजन भी मीठा और स्वादिष्ट लगता है। भोजन करने के बाद कुछ अध्ययन और अच्छी बातों की चर्चा करनी चाहिये और एकान्त में बैठकर अनेक प्रकार के ग्रन्थों पर विचार करना चाहिये। तभी मनुष्य पूर्ण बन सकता है नहीं तो अपूर्ण ही बना रहता है।

श्री श्री १०८

[श्रीमती सरिता शर्मा एम० ए० बी० एड०]

कहते हैं कि विभिन्न धातुओं की भस्म बनाते समय उसकी जितनी अधिक पुटी लगाई जाय उतनी ही कम मात्र में भयंकर रोग में देने से अधिक प्रभावशाली होती है। होम्योपैथी चिकित्सा प्रणाली में कोई भी औषधि जितनी अधिक पोटेन्शी की होती है उतनी ही अधिक प्रभावशाली होती है और उसकी मात्र भी अपेक्षा कृत कम ली जाती है। मन्त्र महा औषधि है जिससे न केवल शारीरिक रोक अपितु मानसिक आधियाँ सभी तत्क्षण नष्ट हो जाती हैं। तुलसी ने सरल शब्दों में इस रहस्य को आग और फूंस की उपमा द्वारा व्यक्त किया है :—

ज्योंही नाम हृदय धरा, भया पाप का नाश।
मनु चिनगारी गिर पड़ी, घास फूस के पास ॥

भगवान के नाम से बढ़कर दूसरा कोई बड़ा मन्त्र नहीं है। भगवान का नाम एक ऐसी मणि है जिससे इस लोक में अभ्युदय होता है और परलोक में निःश्रेयस प्राप्त होता है। तुलसी के ही शब्दों में :—

"राम नाम मणि दीप धरि, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरो, जो चाहस उजियार॥"

"जपहु जाहि शंकर शत नामा।
तुरतहि होइ हृदय विश्रामा॥"

योग दर्शन में भी भगवान पतंजलि ने प्रकाश के आवरण के निवृत्ति के लिए जहाँ बहिरंग वेग का वर्णन किया है वहाँ मन्त्र जप को भी अन्तःकरण शुद्धि का एक साहस बताया है। श्वास प्रश्वास के नियमन को कबीर ने अजपाजाप कहा है। भगवान पंतजलि ने "तज्जपस्तदर्थ भावनम् अर्थात् गुरुमंत्र का जप करने से उसके अर्थ का प्रकाश होता है और मन में निग्रह की धारणा होने लगती। जप के लिए अधिकतर लोग माला का उपयोग करते हैं जिसमें १०८ मनिका होते हैं। महापुरुषों के पहिले भी अनन्त श्री विभूषित श्री श्री १०८, १०८ इत्यादि विशेषण लगाने का प्रचलन है। किसी मन्त्र के जपने के विधानों में भी इसी प्रकार की शास्त्र आज्ञा है कि अमुक मन्त्र इतनी मालायें जपने से सिद्ध होता है। १०८ या इस प्रकार की संख्याओं के विधान का आखिर रहस्य क्या है? यह एक विचारणीय प्रश्न है। मन्त्र के साथ जब तक मन की शक्ति नहीं लगती तब तक वह

निरर्थक होता है। इसीलिए मन्त्र को— "मननात्मन्त्रः अर्थात मन का विषय होने से मन्त्र कहते हैं। मन्त्र इसीलिए गोपनीय रखा जाता है कि वह अन्तःकरण में ही सुरक्षित रह सकता है और मन की शक्ति में ही सार्थक होता है। मन्त्र दीक्षा किसी सिद्ध सद्गुरुदेव के मुखारविन्द से लेनी चाहिए, ऐसा शास्त्रों में विधान है क्योंकि उसके द्वारा श्रीसद्गुरुदेव मन की शक्ति द्वारा मन्त्र के शब्दों में अर्थ का प्रकाश कर देते हैं जिसको कि साधक अपने निरन्तर प्रयास से बढ़ाता रहता है और अन्तोगत्वा वह स्वयं तेजपुंज बन जाता है।

"ॐ" "शिव" "वसुदेव" आदि सभी मन्त्रों में देखे जाते हैं। योगदर्शन में "ॐ" को ही ईश्वर का वाचक कहा है "तस्य वाचकः ईश्वर का वाचक कहा है "तस्य वाचकः "प्रणवः" अर्थात् उसका वाचक "ॐ" शब्द है। तन्त्र, सूफी और प्रतिभिज्ञा शैव दर्शन में शब्दों के इस रहस्य को अङ्कों के माध्यम से प्रकट किया है। सूफी कवियों ने सांकेतिक शैली में शरीर के षट चक्रों आदि का विवेचन संख्यात्मक प्रणाली में किया है। जैसेः— जायसी ने—

बच पौरी पर दशम दुआरा।
तापर बाज राज घरियारा॥
आठ चक्र नौ चरखा डोले।
सुखमन तारकी भीनी वर्वदिया।"

इत्यादि प्रसंगों में ८, ९ संख्या का अर्थ विचारणीय है।१०८ से पूर्णता की अभिव्यक्ति होती है। अगर इसके अङ्कों को जोड़ें तो— १+०+०+८=९ अङ्क प्राप्त होता है। ९ का अङ्क संसार जलधि को तरने की नौका है। सभी मन्त्रों का अभीप्सितार्थ ९ का अङ्क पूर्ण है। उपनिषदों में—"ॐ" पूर्णमदः पूर्णा त्पूर्ण मुदच्यते, पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेव अवशिष्यते—के द्वारा जो भावना व्यक्त हुई है वह इस ९ का ही चमत्कार है।

सन्त-शिरोमणि तुलसी ने अपने नौ के अङ्क की तरह पूर्ण राम को इस प्रकार भजने को कहा है—

"तुलसी अपने रामकों, क्यों नहिं भजतनिसक।
आदि अन्त लौं एक रस, जैसे नौ के अंक॥"

सदा एक रस है। कोई भिन्नता नहीं है। इस तथ्य की सत्यता सिद्ध करने के लिए हम "नौ" का पहाड़ा लिखकर विचार करेंगे।

९, ९=९
१८, १+८=९
२७, २+७=९
३६, ३=६=९
४५, ४+५=९
५४, ५+४=९
६३, ६+३=९
७२, ७+२=९
८१, ८+१=९
९०, ९+०=९

इस प्रकार की विचित्र सत्यता हमें किन्हीं और अङ्कों में नहीं मिलती है। इसमें शून्य से लेकर ९ तक ही अंक है। इन्हीं से सारे अंकों का निर्माण होता है। नौ के ही अन्दर ही सारे अंक है और यही पूर्णाङ्क है। कहने

का तात्पर्य यह है कि उसी प्रकार भगवान राम "पूर्ण पर ब्रह्म" हैं। सारी मायिक रचनायें उन्हीं की देन हैं। उन्हीं से निःसृत होकर उन्हीं में समाहित होती हैं।

अगुन अलेप अमान एक रस।
राम सगुन भए भगत प्रेम रस॥"

कहकर उनकी एक रसता को स्पष्ट करते हैं।

श्री रामचरित मानस में तुलसी ने वंदना प्रसंग में श्लोकों के माध्यम से ६ के अंक का ही चमत्कार दिखाया है—

"वन्दे वाणी विनायकौ" (१, २) —

"भवानी शंकरौ वन्दे" (३, ४)

"वन्दे बोधमयं नित्यं गुरु" (५)

"वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वर कपीश्वरौ (६)

"न होऽहं राम वत्रयां"

"वंदेऽहं तम् शेष कारण परं रामख्या- मीशं हरिम्"

इस प्रकार गोस्वामीजी ने ६ देवों की वन्दना से ही "रामचरित मानस" का प्रारम्भ किया है। ईश्वर को पाने के लिए नवधा भक्ति से बढ़कर और कोई उपाय नहीं हैं। तुलसी ने नौ प्रकार की भक्ति का सुन्दर विवेचन कर अन्त में कहा है—

"नव मंह एकउ जिन्ह कें होई।
नारि पुरुष सचराचर कोई॥
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरे।
सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे॥

नव प्रकार की भक्ति का स्वरूप देखिए—

प्रथम भक्ति सन्तन कर संगा।
दूसरे रति मम कथा प्रसंगा॥
गुरु पद पंकज सेवा,
तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन,
करय कपट तजि गान॥
मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा।
पंचम भजन सो वेद प्रकाशा॥
छठ दम शील विरति बहु कर्मा।
निरत निरन्तर सज्जन धर्मा॥
सातव सम मोहि मय जग देखा।
मोते सन्त अधिक कर लेखा॥
आठव जथा लाभ सन्तोषा।
सपनेहु नहिं देखे परदोषा॥
नवम सरल सब सन छल हीना।
मम भरोस हिय हरष न दीना॥

जिस प्रकार राम नाम रूपी मणि जीभ रूपी देहरी पर रखने से बाहर भीतर दोनों ओर प्रकाश होता है उसी प्रकार नौ के गुणन-खण्ड ६×४=३६, ६×७ ६३ के साथ संगति करने से इहलोक और परलोक दोनों ही सुधर सकते हैं—तुलसी के ही शब्दों में—

जग ते रहु छत्तीस ह्वै, राम चरण छः तीन।

जिस प्रकार ३६ में ३ और ६ परस्पर विमुख हैं उसी प्रकार जीव को संसार में रहते हुए संसार से निर्लिप्त रहना चाहिए तथा ६३ में ६ और ३ सम्मुख हैं उसी तरह निरन्तर ईश्वर के अभिमुख रहना चाहिए। जो लोग ऐसा नहीं करते उन पर खेद प्रकट

करते हुए तुलसी कहते हैं.........

"सुनहु उमा ते लोग अभागी।
हरि तजि होहिं विषय अनुरागी ॥"

जब प्राणी ईश्वर की आराधना, उपासना में प्रेरित होता है तो माया के बन्धन ढीले होने लगते हैं। भगवान राम अपने मुखारविन्द से स्वयं कहते हैं—

"जबहिं जीव सम्मुख होइ मोही।
कादहुं जन्म कोटि अघ तोही ॥

ईश्वर के वाचक जितने शंकर, राम, वासुदेव आदि शब्द हैं उनका योग.नी ही आता है।

"श्रीमद्‌भगवत गीता' में श्री कृष्णचन्द्र ने आठ प्रकार की प्रकृति को शून्याकार कर परब्रह्म में प्रकृति और पुरुष की एकता का प्रतिपादन किया है। देखिए—

"भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृति रष्टधा ॥ ६/४
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥' ६/५

अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार ये आठ प्रकार की प्रकृति है। इससे भिन्न जीव के रूप में उच्च प्रकृति भी है। जिससे समस्त ब्रह्मांड संचालित होता है और उसका नियन्ता ईश्वर है।

१०८ या १००८ की संख्या यही सूचित करती है कि अष्टचक्रों का वेधन करके चित्तवृत्ति शून्याकार होती है और तब जीव ब्रह्म की एकता या समतावस्था प्राप्त होती है। पंचमहाभूत तथा मन, बुद्धि, अहंकार अपने-अपने कारण में जब लीन हो जाते हैं तब एक शेष रहता है।

सदा एक भाव में रहो

[स्वामी विवेकानन्द]

जो सचमुच योगी होने की इच्छा रखते हैं, उन्हें थोड़ा थोड़ा हर विषय को पकड़ने का भाव छोड़ देना होगा। एक भाव लेकर सदा उसी में विभोर होकर रहो। सोते जागते सब समय उसी को लेकर रहो। तुम्हारा मस्तिष्क स्नायु शरीर के सर्वाङ्ग उसी के विचार से पूर्ण रहें दूसरे सारे विचार छोड़ दो। यही सिद्ध होने का उपाय है। और इसी उपाय से बड़े-बड़े धर्म वीरों की उत्पत्ति हुई है। शेष सब तो बातें करने वाले यन्त्र मात्र हैं। यदि हम सचमुच स्वयं कृतार्थ होना और दूसरों का उद्धार करना चाहें तो हमें बकवास छोड़ कर और भी भीतर प्रवेश करना होगा। इसे कार्य्य में परिणित न करने का पहला सोपान यह है कि मन किसी प्रकार चंचल न किया जाय। जिनके साथ बातचीत करने पर मन चंचल हो जाता हो, उनका साथ छोड़ दो और जो सर्वोच्च अवस्था की प्राप्ति के अभिलाषी हैं उन्हें तो सत असत सब प्रकार के संग को त्याग देना होगा। पूरी लगन के साथ कमर कसकर साधना में लग जाओ फिर मृत्यु भी आये तो क्या ?

कुछ संस्मरण

बहिन श्री द्रौपदी देवी जी"

[एक साधक]

बहिन श्री द्रौपदी जी का जन्म अमृतसर में पवित्र क्षत्रियकुल में हुआ है। माता-पिता के लाड़-प्यार में बाल्यावस्था व्यतीत हो चुकने पर उस समय की सामाजिक परम्परा का निर्वाह करते हुए इनका विवाह अल्पायु में ही कर दिया गया था। परन्तु विधाता का विधान ऐसा रहा कि इनका सौभाग्य कुछ विशेष दिन न रह सका। बचपन से ही इनका रुझान ईश्वर-भक्ति, सत्संग, कीर्तन की ओर रहा है। अतः वैधव्य दुःख प्राप्त कर यह सब ओर से मन हटाकर उस ओर और भी अधिक प्रवृत्त हो गयीं। बहिनजी ने अपना दैनिक कार्यक्रम इस प्रकार रखा जिससे मन को निरर्थक बातें सोचने का अवकाश ही न मिल सके। गृह कार्यों के साथ साथ ईश्वर-पूजन, भजन, आदि का नैतिक कार्य भी नियमानुसार चलता था। विश्वात्मा परम पावन श्रीकृष्ण जी के कमल-चरणों में इनका स्वाभाविक अनुराग था। अपनी मति के अनुसार जिस प्रकार भी सम्भव था। अखिल ब्रह्माण्ड नायक का चिन्तन किया करती थीं। क्योंकि अभी तक श्री सतगुरुदेव जी के पावन उपदेश का प्रकाश प्राप्त नहीं हुआ था। क्रमशः समय निकट आया और अपने परम पुण्यों के फलस्वरूप उनके पवित्र तप एवं स्वाध्याय के अनुरूप आनन्दकन्द परम गुरुदेव योगयोगेश्वर महाप्रभुजी रामलालजी के पवित्र चरण-कमलों की इनको प्राप्ति हुई। श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों की प्राप्ति में एक विशेष घटना कारण बनी।

बहिन द्रौपदीजी अमृतसर में कहीं दर्शनार्थ गई थीं। अमल साहब के पास से निकल रही थीं तो आँखों के सम्मुख एक विचित्र दृश्य आया जिसे देखकर यह अत्यन्त विस्मित हो गईं। मन में सोचने लगीं इस घोर कालि-काल में यह कैसे सम्भव हो सकता है? बात यह थी कि सामने से हमारे गुरुभाई श्रीगुलाब-राजजी आ रहे थे। उस समय वह श्री प्रभुजी के प्रेम में निमग्न, ध्यान के शहर में मस्तों के समान चले आ रहे थे। बहन द्रौपदीजी ने स्पष्ट देखा—सम्मुख आ रहे महापुरुष की आकृति भगवान सदाशिव के समान ही आभासित हो रही है। तीसरा नेत्र बिलकुल स्पष्ट दीखता था जिससे एक दिव्य प्रकाश निकलकर सामने पड़ रहा था जिससे वे आगे बढ़ते जाते थे। इनकी वेषभूषा साधारण गृहस्थों जैसी दिखाई देती थी किन्तु मुख के चारों ओर एक विशेष प्रकार का दिव्य तेज मण्डल आभासित था। बहिन द्रौपदीजी इकटक इन्हें देखती रहीं। मन में संशय होता

क्या यह स्वयं सदाशिव हैं ? शंका मिटाने को बार-बार देखतीं कि तीसरा नेत्र अब भी है या नहीं। परन्तु इन्हें वह तृतीय नेत्र निरन्तर ही दीखता रहा।

स्वभावतः इन महापुरुष के बारे में इन्हें जिज्ञासा हुई परन्तु स्वयं उनसे पूछने का साहस न कर सकीं। अतः आसपास के व्यक्तियों से साहस करके पूछा—इस घोर कलिकाल में यह कौन महापुरुष है ?

इनका मुखमण्डल दिव्य तेज से युक्त है। इनकी आकृति स्वयं भगवान शिव से मिलती है। भाई श्री मुलखराज जी के साथ वाले व्यक्तियों ने बताया बहिन जी यह योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के परम कृपापात्र हैं। इनका नाम श्री मुलखराजजी महाराज हैं। परम कृपानिधि श्री प्रभूजी ने अपनी कृपा से इनको "तुरीय स्थिति" प्रदान की है। इस कारण इनके नेत्र चौबीस घंटे बन्द रहते हैं। इस प्रकार की बातें सुनकर द्रौपदीजी को वर्णनातीत हर्ष हुआ और श्री प्रभूजी का निवास स्थान पूछकर तत्काल ही दर्शनार्थ चल पड़ीं। बहिनजी जिस समय श्री प्रभूजी के दरबार में पहुंची उस समय वहाँ नियमानुसार सत्संग चल रहा था। अनेकों सत्संगी स्त्री-पुरुष बैठे थे। ध्यानानुभव इत्यादि की चर्चाएं चल रहीं थीं। कोई कोई भगवान के अनुराग में आकर भजन आदि भी सुना रहे थे। बहिन द्रौपदीजी को भी भजन गा कर सुनाने की इच्छा हुई थी। श्री प्रभुजी के चरणारविन्दो के सम्मुख बैठकर प्रेम में मग्न होकर द्रौपदीजीने एक भजन गाया। श्री मुल्कराज जी उस समय श्री प्रभुजी के निकट ही बैठे हुए थे। द्रौपदी जी का भजन सुनकर उनका मन बड़ा प्रसन्न हुआ। श्री प्रभुजी अभी तक यही विचार कर रहे थे कि इस देवी को क्या दिया जाय। संस्कार बहुत छोटा सा दिखाई देता था। किन्तु श्री मुलखराज जी जो उस समय "तुरीय" स्थिति में थे वह भजन सुनकर गद्‌गद् हो उठे थे। उन्होंने श्री प्रभूजी से प्रार्थना की—हे ! अगाध करुणासागर कृपा करके इस देवी को आप चुडाला की सम्पत्ति प्रदान करें यह सब प्रकार से दया की पात्रा है। मुलखराज की यह बात सुनकर श्री प्रभू जी कुछ विचार में पड़ गए और सोचने लगे अरे, ! इसने यह बहुत बड़ी बात कह दी है। चुडाला तो परम योगिनी थी। उस महति शक्ति की यह अधिकारणी नहीं है। जब श्री प्रभुजी इस प्रकार विचार-मग्न थे उसी समय अकस्मात, एवं विलक्षण घटना घटी। वह नैपाल वाले सदाशिव जो हमारे दादा गुरु है जिनकी आयु का कोई पता नहीं लग सका है जो प्रातःकाल बच्चे दिखाई देते हैं मध्याह्नकाल में युवक एवं सायं बिलकुल वृद्ध दिखाई देते हैं वही स्वयं आकाश में दिखाई दिए। वहाँ खड़े खड़े प्रशन्न मुद्रा में कहने लगे कोई बात नहीं सब ठीक है। बच्चे के मुखसे निकला है दे दो यह देवी अधिकारिणी

है। श्री महाप्रभु की यह उदारता पूर्ण आज्ञा सुनकर श्री प्रभुजी ने बहिन द्रौपदीजी पर तत्क्षण गहरा शक्तिपात किया। तत्काल ही प्रभाव हुआ और बहिनजी की ध्यान स्थिति ऊँची चलने लगी। प्रतिक्षण प्रभुजी का दिव्य साक्षात्कार बना रहने लगा। भगवान श्रीहरि के चतुर्भु ज रूप का दर्शन करते-करते वे स्वयं चतुर्भु जा बन गयीं। श्रीहरि के स्वरूप में वे स्वयं को लीन रखा करती थीं। उन्हें स्वयं के चतुर्भु जा होने का भान रहता था। उनके इस ध्यान का यह प्रभाव पड़ा कि वह अन्य ध्यानी भाई बहनों को भी चलती चतुर्भु जा दिखाई पड़ती थीं स्वयं श्री प्रभुजी भी प्रसन्न मुद्रा में उन्हें चतुर्भु जा कहकर बुलाया करते थे। कृपासागर के मुखारविन्द से निकलने के कारण इनका चतुर्भु जा नाम प्रख्यात हो गया।

बहिन द्रौपदी जी की ध्यान-स्थिति दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ने लगी। खुली आँखों से विश्वमोहन को सर्वत्र देखतीं थीं। वह अखिल लोकपावन जगदात्मा श्री हरि इनके साथ विविध क्रीड़ाएँ किया करते थे। इनकी स्थिति इतनी ऊँची बढ़ी कि भगवान श्रीकृष्ण इनके आव्हान पर स्वयं आकर भोजन किया करते थे। जब वह भोग लगातीं थीं तो इनकी थाली से एक दो फुल्का घट जाया करता था। वह विलक्षण बात बहिन जी ने श्री प्रभु जी के चरण कमलों में निवेदन की। श्री प्रभुजी ने आदेश दिया, "द्रौपदी श्री प्रभु की तुम पर महान कृपा है। परन्तु अपनी यह स्थिति किसी को बताना नहीं" परन्तु होनहार ऐसी कि बहिन जी के मुख से यह बात निकल गई, इतनी बड़ी बात मन में न रख सकीं। सुन कर सभी सत्संगी भाई-बहन इस चमत्कार को प्रत्यक्ष देखने को उत्सुक हो गए एवं श्री प्रभु जी की बारम्बार प्रार्थना करने लगे—हे! प्रभो यह चमत्कार तो हमें दिखा ही दीजिए। कृपानिधि श्री प्रभु जी ने द्रोपदी जी को आदेश दिया-"तुमने यह काम ठीक नहीं किया जो यह घटना सबको बता दी। अब जब सबसे कह ही दिया है तो सबके सामने भोग लगा कर दिखा।" श्री प्रभु जी की आज्ञा पाकर सब सत्संगी भाई-बहिन बैठ गए। बहिन जी ने एक थाली में भोजन परोसा और श्री हरि को निवेदन करने लगीं उस समय उन्होंने स्वयं बनाया हुआ एक भजन गाया था जो इस प्रकार है:—

बैकुण्ठ वासी हे प्रभु जी, भोग लगाजा आजा
मैं लिए बैठी हूं अपने थाल में भोजन,
दर्श दिखाजा आजा।

जिस समय ध्यान मग्न हो द्रौपदी जी ने यह प्रार्थना की तो सबने आश्चर्य से देखा कि रोटी का ग्रास टूटता है और विलीन हो जाता है। ध्यानाभ्यासी लोगों ने देखा कि भगवान श्री कृष्ण स्वयं भोजन पा रहे हैं। इस अद्भुत घटना को देख कर सभी सत्संगी भाई-बहिनों के मन में अतिशय उत्साह बढ़ा।

वे दृढ़ता के साथ अपना ध्यानाभ्यास करने लगे। बहिन द्रौपदी जी की दिव्यानुभूति दिन प्रति दिन उच्च स्तर की बनने लगी। शनैः शनैः यह "तुरीय स्थिति" में रहने लगीं। इनके मुख मण्डल पर दिव्यता झलकने लगी। स्वभाव में सात्विकता घर करती चली गई। एक दिन बहिन जी ध्यान-मग्न हुई। श्री प्रभु जी के दर्शनार्थ भाई के कटरे की ओर जा रहीं थीं। तुरीय स्थिति में होने के कारण यह उन्मादिनी सी चल रहीं थीं। जाति से यवन एक कामी व्यक्ति की कुदृष्टि इन पर पड़ी और उसने अपने हाथ से इनका शरीर स्पर्श करने की चेष्टा की। इनकी वृत्ति भंग हो गई आँखें खुलीं तो देखा कि नैपाल वाले सदा-शिव स्वयं आकाश मार्ग से इनके साथ-साथ चल रहे हैं। बहिन जी ने उनसे विनम्रता पूर्वक कहा—हे सर्व शक्तिमान महाप्रभु जी मैं आपकी पुत्री और यह घृणितमन्द-बुद्धि पापी आपके चरणारविन्दों के सम्मुख इसने यह साहस किया। इसके फल को यह अभी भोग ले। बहिन जी के मुख सेयह शब्द निकलते ही वह व्यक्ति अकस्मात् गिर पड़ा और उसका प्राणान्त हो गया। उपरोक्त घटना को देखने वाले सभी व्यक्तियों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ और वे परस्पर कहने लगे—यह देवी तो स्वयं शक्ति स्वरूपा है, जिसके वचन मात्र से यह व्यक्ति इस दशा को प्राप्त हुआ।

पवित्र प्रज्ञा

जैसे वायु का हल्का सा झोंका भी निस्सार तिनके को उड़ा देता है, उसी प्रकार प्रज्ञाहीन मूढ़ पुरुष को थोड़ी सी आपत्ति भी शोकाकुल कर देती है।

× × ×

तीक्ष्ण और विशुद्ध बुद्धि से युक्त पुरुष बिना शास्त्राभ्यास और बिना दूसरों का सहारा लिए भी संसार-सागर से अनायास ही पार हो जाता है।

+ × ×

बुद्धि की मन्दता समस्त दुःखों की चरम सीमा है। अतः विशुद्ध बुद्धि की अभिवृद्धि के लिए वही प्रयत्न करना चाहिए जैसा प्रयत्न धन-सम्पदा आदि के उपार्जन के लिए किया जाता है।

× × ×

पवित्र प्रज्ञा (बुद्धि) चिन्तामणि के समान है। कल्पलता के समान मन-चाहा फल देती है श्रेष्ठ,पुरुष पवित्र प्रज्ञा के द्वारा संसार-सागर से पार हो जाता है किन्तु अधम मानव उसमें डूब जाता है।

—योग वाशिष्ठ

जोड़

[श्री रामचरन सनाढ्य टी० टी० ई० टूँडला]

जोड़िए, चाहे हाथ जोड़िए । चाहे जोड़िये "धन" । विचारों के वस्त्र अनुभव के धागों से सिले होते हैं । विनम्र-वृत्ति प्राप्त होने पर हाथ जुड़ जाते हैं तथा विलोम वृत्तियों में उबाल आते रहने पर धन जुड़ जाता है । मनोहर वसन्त तो भस्म हो ही जाता है ग्रीष्म ऋतु आने पर । अतः विवेक होने पर धनवान सम्राट गिर ही जाता है निर्धन-महान आत्मा के चरणों में । जोड़ लेता है अपने को उस 'शान्त रस' से जिसकी उसे अनन्त से तलाश थी । हम भी संचित संस्कारों वश जोड़ते रहते हैं अपने को । कभी शरीर से, कभी इन्द्रियों से, आत्माओं से, धन से, कलम से, मन से, प्रतिष्ठा से । जोड़े बिना काम भी तो नहीं चलता । विद्युतालय से जोड़ लेने पर प्रकाश अंधकार की धज्जियाँ उड़ा देता है । विद्युत संगीत की सृष्टि होने लगती है । वायु के स्पंदन छूने लगते हैं अछूतों को, उन बन्द कमरों में । बड़े काम का है यह जोड़ ।

इस विश्व विद्यालय में मुझ जैसी छोटी कक्षा वाले इसे "जोड़" कहते हैं । ऊँची श्रेणियों के विद्यार्थी, एकाग्रता, तथा विशेष योग्यता प्राप्त विवेकी गुरु-जन इसी को कहते हैं, "योग" । किन्तु जोड़ने से पहिले जानना पड़ेगा कि जोड़ें तो किस को और किस से जोड़ें । कहीं जोड़ गलत न हो जाय । ठीक ज्ञान होने पर ठीक योग होता है । अतः तत्व को जानकर पहिचान होते ही जोड़ दो, उससे जो 'अपना' है । यही 'ज्ञान योग' कहलाता है । जब जान पहिचान हो गई, तब वह अपना हो गया, सम्बन्ध स्थापित हो गया, शरण प्राप्त हो गई । यही 'भक्ति-योग' है । यह योग उस परमात्मा की कृपा द्वारा, जिससे सम्बन्ध स्थापित हुआ था प्रदत्त होता है । यह योग अन्तरमुखी है । उसे जानने में तथा उसकी शरण प्राप्त करने के लिए जो साधना है उसे ही 'कर्मयोग' की संज्ञा दी गई है । यह जोड़ जो एक होते हुए भी भिन्न से दीखते हैं अपनी 'सुरुचि' या 'सुनीति' जिनका योग फल 'उत्तम' व 'ध्रुव' है योगी को उत्तानपाद बना देता है । क्या आत्मा व शरीर का योग जीव को इस संसार में प्रगट नहीं करदेता । किन्तु शरीर व संसार जिसके रूप प्रतिपल नष्ट हो रहे हैं उनकी ओर दृष्टि-पात करना आवश्यक है । अन्यथा—"जोग कुजोग, ज्ञान अज्ञानू" की दशा होगी ।

यह आत्मा जब शरीर से योग मान लेता है तब उसे जीवात्मा कहते हैं । जीवात्मा के तीन शरीर होते हैं :—

(१) स्थूल शरीर

पाँच भौतिक तत्व (पृथ्वी, जल, अग्नि,

आकाश, वायु) का बना हुआ है।

(२) सूक्ष्म शरीर

इसमें मुख्य तीन तत्व हैं जिनके १७ अवयव हैं।

(१) तन्मात्रायें (पांच भौतिक तत्वों की बीजरूप अवस्थायें)

(२) प्राण (जिसके आधीन पांच कर्म इन्द्रियां हैं)

(३) प्रज्ञा (जिसके आधीन पांच ज्ञान इन्द्रियां हैं)

(३) कारण शरीर

जो तीनों गुणों के अव्याकृत परमाणुओं या संस्कार बिन्दुओं का बना है। चेतन शक्ति के सहयोग से यह चिन्मय बन जाता है। पांच तन्मात्रायें तमोगुण के कार्य हैं। प्राण और कर्म-इन्द्रियां सतोगुण के कार्य हैं। प्रज्ञा तथ ज्ञान इन्द्रियां सतोगुण के कार्य हैं।

आपने शरीर में तत्व योग देखा। आइये आगे बढ़ें। उस विराट योग को भी देखें। शरीर 'समष्टि' और 'व्यष्टि' भेद से दो प्रकार के हैं:—

(१) किसी एक शरीर को 'व्यष्टि' शरीर कहते हैं।

(२) संसार के समस्त शरीरों के संघात को 'समष्टि शरीर कहते हैं।

विराट-योग—

(१) स्थूल शरीर		+	व्यष्टि शरीर	+	समष्टि शरीर
			पांच भौतिक		समस्त अधिभूत
लोक	………		भू लोक (पृथ्वी)		समस्त ब्रह्माण्ड
देवता	………		अग्नि		वैश्वानर
केन्द्र	………		शरीर में उदर		एक ब्रह्माण्ड
(२) सूक्ष्म शरीर			पांच तन्मात्रायें		समष्टि पांच तन्मात्रायें
			प्राण		विद्युत
			प्रज्ञा		महत्तत्व
लोक	………		भुवर्लोक (अंतरिक्ष)		महदन्तरिक्ष
देवता	………		सूत्रात्मा (प्राण)		सूत्रात्मा
			+		+ हिरण्यकगर्भ
			तैजस् (प्रज्ञा)		महतत्व
केन्द्र	………		मूर्धा		द्यु लोक
(३) कारण शरीर					
लोक	……		(स्वर्लोक)		द्यु लोक
देवता	……		जीवात्मा (प्राज्ञ)		परमात्मा (ईश्वर)
केन्द्र	……		मूर्धा		महर्लोक

चक्र योग

(१) मूलाधार	(गणेश)	पृथ्वी तत्व	गुदा चक्र (मलत्याग)
(२) स्वाधिष्ठान	(ब्रह्मा)	जल तत्व	इन्द्रिय चक्र (प्रजनन)
(३) मणि पूरक	(विष्णु)	अग्नि तत्व	नाभिचक्र (पाचन)
(४) अनाहत	(रुद्र)	वायु तत्व	हृदय चक्र (सूर्य)
(५) विशुद्ध	(सूत्रात्मा)	आकाश तत्व	कण्ठ चक्र (प्राण शक्ति)
(६) आज्ञा	(चेतन)	महत्तत्व	आज्ञा चक्र (आसन)
(७) शून्य	(ब्रह्म)	अव्यक्त सहस्रदल कँवल	(चिदाकाश)

चक्र-योग

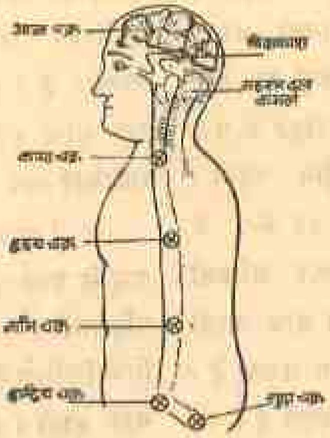

विचार योग

सूक्ष्म शरीर से सम्बन्धित होने के कारण निम्नलिखित (४) भागों में बाँटा जा सकता है। तथा इन्हीं तत्वों का एकीकरण ज्ञान-योग की झलक देता है।

(१) परायणता (२) तन्मयता (३) उपलब्धि (४) निमग्नता।

हठ का तात्पर्य जिद करना नहीं। "ह" अक्षर चन्द्रमा का द्योतक है और 'ठ' सूर्य का। इन दोनों का योग ही पिंगल योग कहलाता है। स्थूल शरीर से सम्बन्धित होने से इनको निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है :—

चन्द्र + सुषमना + सूर्य

(इड़ा) — चेतन + (पिंगला)

पवित्रता — शान्ति — आनन्द

(१) नेती

(२) धोती अन्तरमुखी अखण्ड आनन्द

(३) वस्ती वृत्ति

(४) कपाल भाति

(५) त्राटक

(६) नौली

नाद योग

हमारे शरीर के चक्रों में शक्तियाँ गुप्त रूप से विद्यमान हैं। यदि किसी चक्र पर कोई ऐसा शब्द या 'ध्वनि' उच्चारण की जाय जो मनुष्य की बोलचाल में, उस चक्र से समता रखने वाले बाहरी केन्द्र या 'ध्वनि से प्रकट होने वाले शब्द की नकल हो तो इस क्रिया से जो थर्राहट पैदा होगी, वह कुछ समय बाद अभ्यास शुद्ध बन पड़ने पर बाहरी स्थान के शब्द के अन्दर मौजूद थर्राहट के समान होने लगेगी। और समानता भरपूर होने पर दोनों शब्दों का या स्वरों का योग हो जावेगा। इस प्रकार एक थर्राहट के पैदा होने पर दूसरी थर्राहट स्वतः होने लगेगी। जब यह दशा होने लगती हैं तब केन्द्र के स्वामी के चेतन गुण तथा अन्तर शक्तियाँ अभ्यासी के अन्दर अपने आप जाग जाती हैं, तथा वह उनसे काम भी लेने लगता है। इस दशा को "मंत्र सिद्धि" भी कहते हैं। यह सृष्टि योग स्वरूप है पर कितनी दुर्विज्ञेय और दुरूह है, वेद बतलाते हैं।

कौन पुरुष निश्चित रूप से जानता है तथा कौन इस लोक में सृष्टि का विवरण बता सकता है। यह दिखाई पड़ने वाली विविध प्रकार की सृष्टि किस निमित्त कारण से चारों ओर से उदय हुई और किस उपादान कारण से दोनों बातें एक हो गयीं। कौन जानता है जो विस्तार से बता सके। कोई कहे कि देवता इस तथ्य को जानते होंगे तो कहते हैं कि देवगण, इस संसार के विविध रूप से बनने के बाद उत्पन्न हुये हैं अतः अपने से पूर्वकाल की सृष्टि को वे नहीं जान सकते। उनसे भिन्न कौन मनुष्य इस जगत के कारण को जानता है। जिस कारण से यह सृष्टि उत्पन्न हुई है वह कारण ही इस सृष्टि को धारण किये हुये हैं अथवा नहीं धारण किये हुये। जो इस जगत का अधि-अक्ष:) ईश्वर है वह उत्कृष्ट आकाश रूप. अपने प्रकाश में या अपने आनन्द स्वरूप में प्रतिष्ठित रहता है इस प्रकार का वह सुख रूप परमेश्वर कौन जानता है अथवा नहीं जानता है। एकमात्र वह सर्वज्ञ ईश्वर ही इस सृष्टि को जान सकता है, अन्य नहीं।

सदाचार योग

हे ! आनन्द स्वरूप आत्माओ उस प्रभु से प्रार्थना करो। उसकी कृपा से उसे पहिचानो। उसकी कृपा प्राप्त करने के साधन निम्नलिखित हैं। यद्यपि कृपा साधन से प्राप्त नहीं होती। और होती भी है। कुछ दशा ऐसी है जो शब्दों के परे है फिर भी—

(१) जो आत्मा को अमर नहीं जानते वे ही मृत्यु से डरते हैं।

(२) किसी को गाली न दो। वृथा न बोलो ! चुगली न करो। असत्य न बोलो। चोरी न करो। परिश्रम से धन कमाओ।

(३) अपने विरोधी को अनुकूल बनाने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि उसके साथ सरल और सच्चा प्रेम करो। वह तुमसे द्वेष करे, तुम्हारा अनिष्ट करे, तब भी तुम तो प्रेम ही करो।

(४) कर्त्तव्य में प्रमाद न करो। उसी पर ईश्वर की कृपा होती है, आलसी और कर्तव्य-विमुख लोग उसके योग्य नहीं।

(५) जीवन बहुत थोड़ा है। सबसे प्रेम-पूर्वकहिल-मिल कर चलो। प्रेम पूर्ण व्यवहार ही अमृत है। अमत का विस्तार करो। विष की बूंद मत डालो।

(६) बड़ा वही है जो अपने को छोटा मानता है। यहमंत्र सदा स्मरण रखो।

(७) देहाभिमान ही पाप है और यही सबसे बड़ी अपवित्रता है या तो अपने को ईश्वर की पवित्र अभिन्न अंश आत्मा मानो या अपने को उस प्राणेश्वर प्रभू का दास मानो।

(८) मन से रागद्वेष को निकाल कर अपना भक्त भाव से इन्द्रियों के द्वारा विषयों का भोग करना चाहिए। नकि राग द्वेष युक्त होकर या इन्द्रियों के गुलाम होकर। इन्द्रियों से काम लो लेकिन उनके कहने में चलकर उनके गुलाम मत बनो।

अंत में आपको मैं ध्यान योग से जोड़ देना चाहता हूं। कल्पना कीजिये एक बहुत बड़ा सरोवर है। जहाँ तक दृष्टि जाती है जल ही जल है। उसके बीच में एक द्वीप है। उस द्वीप में अनेकों फलों के वृक्ष लगे हैं। उन वृक्षों पर तितली तथा भौरों के झुण्ड कभी ऊपर उड़ते हैं कभी झुककर यकायक फूलों पर बैठ जाते है। उनकी मस्त महक आपको भली लग रही है। उस उद्यान में एक स्फटिक शिला पर जो रत्नो की बनी है भगवान राम धनुष-बाण लिये विराजे है। उनके शरीर पर अमूल्य वस्त्र हैं गले में मणियों की मालायें पड़ी हैं, आप उनके चरण धोइये। चरणोदक लीजिये। उनके तिलक चन्दन लगाइये आरती कीजिये भोग लगाइये उनसे जो चाहे कहिये! ध्यान में क्या आनन्द है उसे लीजिये। कर के देखिये।

चिन्ताओं को भगाओः—

समस्त चिन्ताओं को हटाकर मन को खाली रक्खो जब भी कोई चिन्ता मन में उठ तभी उसे भगा दो। इस प्रकार करने से देह रूप वस्तु का अतिक्रमण हो जायगा। वास्तव में मनुष्य का सारा जीवन इस अवस्था को लाने की एक सतत् चेष्टा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

× × × ×

चिन्तायें चित्र हैं, हम उनको नहीं बनाते। प्रत्येक शब्द का अर्थ है, हमारी प्रकृति के साथ यह जड़ी हुई हैं।

—श्रुतिसार

सिद्धयोगी पूज्यपाद स्वामी सोमवार गिरिजी

[श्री मथुरादत्त शास्त्री]

धर्म परायण व अध्यात्मप्रधान होने के कारण हमारे देश में साधुओं सन्तों वीतराग महात्माओं योगियों व सिद्ध पुरुषों का सदैव ही उच्चतम स्थान रहा है, प्रत्येक युग में यहाँ ऐसे आत्मशक्ति निष्णात एवं सिद्धि-सम्पन्न योगियों व सिद्धों का आविर्भाव होता रहा है जिन्होंने अपनी चमत्कारिक सिद्धियों तथा विलक्षण शक्तियों से समाज को अत्यन्त प्रभावित किया है, यह देश का सौभाग्य ही है कि नितान्त भौतिकवादी आधुनिक युग में भी ऐसे चमत्कारी सिद्ध पुरुषों के दर्शन यत्र-तत्र भाग्यशाली पुरुषों को होते रहते हैं। निम्न पंक्तियों में मैं एक ऐसे ही सिद्धयोग स्वामी सोमवारगिरि जी महाराज के दो एक संस्मरण उपस्थित कर रहा हूँ।

हमारे प्रान्त उत्तरप्रदेश के पहाड़ी जिले अल्मोड़े में, स्याहीदेवी चोटी की उपत्यका में शीतलाखेत नामक एक सुरम्य स्थान है, जो अल्मोड़ा नगर से लगभग ६ मील पश्चिम की ओर समुद्र की सतह से ५००० फीट की ऊँचाई पर स्थित है, यहाँ चीड़ के जंगल के बीच में अब एक छोटी सी सुघड़ बस्ती बन गई है, मुझ यहाँ के माध्यमिक विद्यालय में पूरे एक वर्ष तक लेखक को अध्यापन करने का अवसर मिला है।

शीतलाखेत से दक्षिण पश्चिम की ओर १ मील की चढ़ाई चढ़ने के बाद पूरे ५ मील का ढालू रास्ता पार करने पर काकड़ीघाट नामक स्थान मिलता है, यहीं स्वामी सोमवार गिरि जी, कोसी नदी के किनारे बिल्कुल एकान्त स्थान में एक छोटी सी कुटिया में रहते थे, उनकी कुटिया से कुछ दूरी पर एक दूसरी कुटिया भी थी, जहाँ दो एक ब्रह्मचारी प्रायः रहा करते थे, स्वामी जी रात्रि में कभी भी किसी को भी अपनी कुटिया के समीप नहीं रहने देते थे। वैसे दिन में वे नित्य भक्तों की मंडली से घिरे ही रहते थे।

[चाय की देगची]

अपनी कुटिया में आये हुये भक्तों का स्वागत स्वामीजी चाय पिलाकर किया करते थे उनके आसन के आगे हमेशा ही धूनी जलती रहती थी, उसी धूनी के एक भाग में लगभग दो सेर पानी समा सकने वाली एक देगची रखी रहती थी, प्रातःकाल ही उसमें पानी भर कर रख दिया जाता था, दो सेर पानी के अनुमान से उसमें दूध चीनी व चाय पत्ती भी डाल दी जाती थी। उबल जाने पर, एक ओर को हटवाकर, स्वामीजी अपनी एक छोटी सी साफी (छोटा तौलिया) से उसे ढक देते थे, इसी साफी में चमत्कार था, प्रातःकाल एक बार बनी हुई यह चाय शाम (तक जितने भी आ जायँ) दर्शनार्थियों को प्रसाद रूप में मिलती रहती थी। विशेषता

यह थी कि शाम तक भी चाय के स्वाद में ताजगी ही रहती थी।

[पैसे में छेद]

स्वामीजी बातचीत में "साला" शब्द का प्रयोग खूब करते थे, एक बार कई श्रद्धालु-भक्त सामने बैठे थे। बातचीत के प्रसंग में एक सज्जन बोले "महाराज जी जमाना बहुत खराब आगया है, अनहोनी बातें होने लगी हैं। यह सुनकर स्वामीजी बोले "अरे सालो, जमाना अभी क्या खराब हुआ है, जमाना तो तब खराब होगा जब पैसे में भी छेद पड़ेगा, "यह बात सन् १९१३ की थी जबकि छेद वाला पैसा उसके कई वर्षों बाद चला।

[दो टोकरी आम]

एक बार आम के मौसम में एक भक्त कुछ आम लाया। परन्तु स्वामीजी के सामने बैठे हुये लोगों की संख्या उन आमो से अधिक देखकर उसको मन कुछ संकोच हुआ। स्वामीजी झट से बोल पड़े "संकोच क्यों करते हो. अभी घन्टे भर में ही तो खैरना से दो टोकरी आम पहुंचने वाले हैं," खैरना नामक स्थान वहाँ से लगभग १२ मील की दूरी पर है) लोगों ने देखा कि ठीक एक घन्टे बाद एक घोड़े में लदी हुई सुन्दर आमों की दो टोकरियाँ वहाँ पहुंच गई। खैरना निवास स्वामी जी के किसी भक्त ने ये आम भिजवाये थे।

[आमों में कीड़े]

आम आ जाने पर स्वामीजी ने उन्हें बँटवा दिया कुछ दूरी पर बनी हुई कुटिया में रहने वाले एक ब्रह्मचारी के लिए भी कुछ आम दूसरे ब्रह्मचारी के द्वारा स्वामीजी ने भिजवाये। अच्छे आमों को देखकर उस ब्रह्मचारी की नीयत बदल गई। उसने बड़े-बड़े आम तो स्वयं रख लिये और छोटे-छोटे आम उस ब्रह्मचारी को दे आया, लौटकर जब वह कुटिया से कुछ फासले पर आकर आम खाने लगा तो पहिली बार मुँह मारते ही उसका सारा मुँह कीड़ों से भर गया, और सभी आमों मेंभी कीड़े ही कीड़े हो गये। ब्रह्मचारी का जी मिचलाने लगा और धड़ा-धड़ उल्टी होने लगी जब कुछ लोगों का ध्यान उस ओर गया तो वे सहारा देकर ब्रह्मचारी को स्वामीजी के सामने लाये 'स्वामीजी ने मुस्कराते हुये कहा "क्यों तबियत इतनी फिसल गई कि बड़े-बड़े आम खुद खा लिये और उस ब्रह्मचारी को छोटे-छोटे दे दिये। लोभ का फल देख ले, जा मुँह धोकर आ थोड़ी सी चाय ले ले" ब्रह्मचारी लज्जित होता हुआ गया और मुंह धोकर वापिस आया, स्वामी जी ने उसे थोड़ी सी चाय दी, चाय पीते ही ब्रह्मचारी पूर्ण स्वस्थ था।

इसी प्रकार समय पर स्वामीजी के अनेकों चमत्कार भक्त लोग देखते रहते थे। काफी वर्षों तक काकड़ीघाट में रहने के बाद लगभग सन् १९४१ में यकायक एक दिन प्रात काल लोगों ने देखा कि कुटिया खाली है। धूनी ठंडी है, देगची वहीं पड़ी है परन्तु वह चमत्कारपूर्ण साफी उसके ऊपर नहीं है," पता नहीं स्वामीजी कहाँ चले गये थे, चारों

ओर के रास्तों में कहीं भी किसी ने उनको जाते नहीं देखा। तब से फिर कभी उनके दर्शन लोगों को हुये ही नहीं। महात्माओं का रहस्य महात्मा ही जान सकते हैं।

ईश्वरोपासना की इच्छा क्यों नहीं होती ?

शास्त्र, गुरुजन, आस्तिक जन, अहर्निशि ईश्वरोपासना के लिये प्रेरित करते हैं। स्वयं अपना अन्तरात्मा भी उपासना को लाभप्रद मानता है, तथापि न जाने क्यों ईश्वरोपासना की इच्छा नहीं होती ? यह क्यों ? बात बहुत सीधी है, जैसे ज्वर के अंश में अन्न में अरुचि हो जाता है, चाहता हुआ भी मनुष्य अन्न नहीं खा पाता। ठीक इसी प्रकार चाहते हुए भी ईश्वर उपासना की अभिरुचि न होना यह लक्षण भी आध्यात्मिक रोग की विद्यमानता का प्रधान प्रमाण है। जैसे शारीरिक जीवन के लिये अत्यावश्यक अन्न में भी अभिरुचि न होना यह सिद्ध करता है कि तादृश पुरुष रोग-ग्रस्त हो गया है और उसे तत्परता पूर्वक अपनी चिकित्सा करानी चाहिये। ऐसे ही आध्यात्मिक जीवन के लिये अतीव अनिवार्य ईश्वर उपासना में भी अभिरुचि न होना इस बात का स्पष्ट संकेत है कि तादृश व्यक्ति को अविलम्ब अपनी आध्यात्मिक चिकित्सा करानी चाहिये। जैसे भूख लगने के लिये भी ज्वर की औषधि का तत्परता पूर्वक सेवन करना ही एकमात्र उपाय है ठीक इसी प्रकार ईश्वर की उपासना में अभिरुचि बढ़ाने का उपाय भी ईश्वर की उपासना ही है।

यहाँ यह पूछा जा सकता है कि श्रवण, कीर्तन आदि से कामादि आधि-व्याधि कैसे शान्त हो जायगी। हम पहले बता चुके है कि श्रद्धा और विश्वास पूर्वक ईश्वर के गुणों का श्रवण, कीर्तन और स्मरण किया जायगा तो उससे एक ऐसी दृढ़ भावना का जन्म होगा कि जिससे न केवल उपासक की अपनी ही, काम क्रोध आदि आधियें शान्त हो जायेंगी अपितु उस व्यक्ति के निकट सम्पर्क में आने वाले दूसरे व्यक्तियों की भी बीमारियां समूल नष्ट हो जायंगी। यह स्पष्ट हो चुका है कि हमारे विचारों का भी वायुमंडल पर समुचित प्रभाव पड़ता है। जब एक साधक बार-बार भगवान के दयालुता पूर्ण, न्यायानुमोदित, वात्सल्य परिप्लुत पवित्र चरित्र सुनेगा या वर्णन करेगा तो उसके हृदय में तादृश दया, न्याय वात्सल्य आदि सद्गुणों का प्रादुर्भाव आवश्यक रूप से होगा ही।

—श्रुतिसार

एक वयोवृद्ध साधक के ध्यानानुभव

(श्री सद्गुरु देव जी को प्राप्त पत्र के आधार पर)

[कछवा जिला मिर्जापुर के वयोवृद्ध साधक श्री पं० सदानन्द उपाध्याय ने सन् १९६६ ई० में गंगा दशहरा के पावन पर्व के दिन श्री योग साधन आश्रम ऋषिकेश के वार्षिक महोत्सव पर सद्गुरु देव अनन्त श्री योगिराज श्री चन्द्रमोहन महाराज से योग-दीक्षा ग्रहण की थी । शक्तिपात योग दीक्षा को प्राप्त करके पं० सदानन्द जी ने अपना अभ्यास श्रद्धा और निष्ठा के साथ नियमित रूप से आरम्भ कर दिया । उनके ध्यान की स्थिति दिन व दिन गहरी होती चली गई । अनेक पावन रम्य दृश्यों और घटनाओं के अद्भुत दर्शन इन्हें अपने ध्यान में होने लगे । श्री श्रद्धानन्द जी ने अपनी ध्यान-स्थिति के अनोखे व दिव्य अनुभव श्री सद्गुरु देव जी को लिखकर भेजे हैं, जिन्हें हम सिद्धयोग के पाठकों को उनके ज्ञान-वर्द्धन के लिये नीचे प्रकाशित कर रहे हैं।

—सं० सम्पादक]

हे प्रभो !

२९-९-६८ को जब मैं ध्यान में बैठा तो मुझे विशेष प्रकार का अनुभव हुआ। जब ध्यान आरम्भ होता तो श्वास ऊपर चढ़ जाता । मैं इष्ट देव में लय था। नाभि देश में देखा कि एक सुन्दर तेजोमय देवी मुकुट धारण किये खड़ी है। उसका केवल शीर्ष भाग ही गर्दन तक मुझे दिखाई पड़ा। नेत्र उसके बन्द थे । ऐसे दर्शन मुझे दो बार हुए।

जब मैं ३०-९-६८ की रात्रि को लगभग ३ बजे जगा तो अपने आपको खुली आँखों इष्ट देव के रूप में ऋद्धि-सिद्धि के साथ देख रहा था, जब ध्यान में बैठा तो दो तीन बार छटपटाया । उसके बाद अपने को अखण्ड मण्डलाकार प्रकाश में देखता था, जिसका वर्णन करना असम्भव है। जैसा मैंने लिखा है ध्यान लगने पर श्वास ऊपर चढ़ जाता था । एक बार इस स्थिति में मालूम हुआ कि मैं इष्ट देव के रूप में हूं और अपनी सूंड को नाभि के निचले भाग में फंसाया जिसमें बड़ी ताकत लगानी पड़ी। इसके बाद ध्यान खुल गया।

पुनः ध्यान लगा ने देखा जिस देवी की केवल गर्दन दिखाई पड़ी थी वही देवी एक सुन्दर सिंहासन पर जिस पर छत्र लगा था कुंडल मुकुट धारण कर पीताम्बर वस्त्र पहने आँखें बन्द किये बैठी है । ध्यान में ऐसा दो बार दिव्य दृश्य सामने आया ।

उसके पश्चात मैं एक श्री विश्वर्मिद के घर निमंत्रण पर गया हुआ था। उनके घर पर ही मेरा दिल घबड़ाने लगा। उस समय बिना खाना खाये वापस घर जाकर जमीन पर लेट गया और खुली आँखों अपने आपको इष्टदेव के स्वरूप में विलीन देखने लगा और

छटपटाने लगा। कुछ देर के पश्चात् शान्ति प्राप्त हुई और मैं जमीन पर पड़ा खुली आंखों ध्यानस्थ था। उसमें देखा प्रभु जी (श्री गुरुदेव) चन्द्रमोहन जी महाराज व महा प्रभ जी (श्री सदा शिव) मेरे दोनों सामने खड़े हैं और श्री महा प्रभु जी मेरे ऊपर अपना कृपा कर-कमल रखे हैं। मैं बड़ी व्यग्रता से छटपटाने लगा। इसके बाद देखा कि देवी जी नेत्र खोल रही हैं। बाद में देखा कि वे बड़े जोर से जम्हाई लेने लगीं। इधर मेरे में भी यही क्रिया होने लगी। फिर देवी जी ने महा प्रभु जी की ओर निहार कर पूछा कि आपने मुझे क्यों जगाया। प्रभु जी ने कहा - उठिये, पहले आपकी पूजा व आरती होगी। फिर बताया जायगा कि क्यों आपको जगाया गया है। देवी जी उसी सिंहासन पर सम्हल कर बैठ गई और उनकी पूजा व आरती होने लगी। मेरे सूक्ष्म शरीर ने उन्हें चन्दन चर्चित किया माला पहनाई और आरती करने लगा। मैंने देखा महाप्रभु जी प्रसन्न मुद्रा में एक ओर खड़े है। श्री कृष्ण जी बांसुरी, शारदा जी सितार और शङ्कर जी डमरू बजा रहे हैं। ब्रह्मा जी वेदपाठ कर रहे थे जिसे मैं साफ सुन रहा था। इसके बाद यह देखा कि एक सूँड़ ऊपर से आई उसमें हाथी की चिंघाड़ जैसा शब्द निकला। तब देवीजी ने ऊपर देखकर कहा-आपभी हैं। सभी लोग यह सब खड़े खड़े देख रहे थे। तब महा-प्रभु जी ने कहा इसे आशीर्वाद दो। तब देवी जी ने खड़े होकर मेरे सूक्ष्म शरीर के मस्तक पर जिसने आरती की थी, हाथ रखकर तीन बार कहा— मंगल हो। इसके बाद मैं बेहोश होकर उसी अवस्था में पड़ा रहा। जब चेत आया तब अपने को इष्टदेव के रूप में पाया।

दिनाङ्क १ - १० - ६८ विजय दशवीं के दिन जब मैं रात्रि के ३ बजे इष्टदेव के रूप में लय हुआ जगा, किसी प्रकार शौच - स्नान आदि किया। स्नान करने के पश्चात् फिर अचेतन अवस्था में इष्ट देव के रूप में ही चार-पाई पर पड़ गया। और इष्टदेव के ही रूप में मंत्र का जाप करता रहा। प्रभु जी व आपको अपनी चारपाई पर पड़ा पड़ा देखता रहा। तथा पाँच हजार गुरु मंत्र का जाप किया।

पुनः जब ध्यान में बैठा तो श्वास चढ़ गया और मैं बराबर इष्टदेव के रूप में लय होकर गम्भीर मुद्रा में नाभि के पास सिंहासन पर बैठी देवी को देखता रहा। करीब १ घन्टे तक यही क्रम चला। इसके बाद महा प्रभु जी के जयन्ती समारोह में सम्मिलित होने गुरुभाई श्री स्वामी प्रसाद जी के घर गया। वहां जाकर देखा भजन, कीर्तन आदि हो रहा है, मैं भी वहीं जाकर बैठ गया। वहां बैठते ही मेरी दशा गम्भीर होने लगी। और मुझे बाहरी ज्ञान अल्पमात्र भी नहीं रहा और उसी आनन्द में मुझे आपका तथा महा प्रभु जी का दर्शन होने लगा और झूमने लगा तथा बिल्कुल तन्मय हो गया। उसी स्थिति में श्री स्वामीप्रसाद जी ने मुझसे आपका व महा प्रभु जी का सामूहिक आरती पूजन करवाया। हे प्रभो आरती होते समय श्री कृष्ण जी ब्रह्मा जी, शंकर जी, सरस्वती

जी और बहुत से देवता गए उपस्थित थे जिन्हें मैं खुली आंखों देख रहा था और आरती के समय श्री कृष्ण जी वन्शी बजा रहे थे ब्रह्मा जी वेदपाठ कर रहे थे और सरस्वती जी वीणा बजा रही थीं तथा शंकर जी डमरू बजा रहे थे। ऐसी अचेत अवस्था की स्थिति उस दिन हमारी ८ बजे रात्रि तक चलती रही।

दूसरे दिन २-१०-६८ को सुबह चार बजे शौच आदि के बाद इष्टदेव के रूप में ही जप शुरु हुआ, पाँच हजार जप करने के बाद फिर ध्यान में बैठा। ध्यान लगा तो ऐसा प्रतीत हुआ कि आपने कहा कि इष्टदेव जी से देवी जी का आसन ठीक करा दीजिये। उसके बाद मेरा शरीर इष्टदेव के रूप में ही तोड़ मरोड़ करने लगा। काफी तोड़ मरोड़ के बाद नाभि के पास एक कमल का फूल दिखाई पड़ा और उसी पर देवी जी विराजमान थीं।

पुन: श्वास चढ़ा ध्यान लगा और देवी जी का उसी कमल के फूल पर दर्शन होता रहा। वह फूल और देवी जी खूब प्रकाशवान् थे। मेरा सूक्ष्म शरीर देवी जी के पास बैठा था। आपकी आज्ञा से देवी जी का आरती पूजन किया। दिन भर मैं इष्टदेव के रूप में बना रहा और श्वास से मंत्र का जाप होता रहा। हे गुरु देव जो मैं ध्यान में देखता रहा वह वर्णन करना मेरी शक्ति से बाहर है फिर भी आपकी कृपा से कुछ लिखने का प्रयास कर रहा हूं।

नित्य की भांति ३-१०-६८ को सुबह ४ बजे शौच स्नान आदि से निवृत होकर इष्ट देव के ही रूप में जप करता रहा। उसके बाद फिर जाप पाँच हजार पूरा होने के बाद ध्यान में बैठा तो श्वास चढ़ा तो आपकी ओर से संकेत मिला– देवी जी से पुन: आशीर्वाद प्राप्त करो। इसके बाद शरीर में कम्पन होने लगी उसके बाद कमल का फूल साफ साफ दिखलाई पड़ा उस पर देवी जी विराजमान थीं। हंस कर देवीजी ने मेरे सूक्ष्म शरीर के सिर पर हाथ रखा और कहा— कल्याण हो, कल्याण हो। इसी प्रकार तीन बार श्वास चढ़ा और ध्यान लगा। यों पूरे दिन मैं इष्ट-देव में लय रहा।

(ज्ञान – गंगा)

(स्वामी विवेकानंद)

ईश्वर की कृपा की हवा बराबर बहा करती है। इस समुद्र रूपी जीवन के मल्लाह उससे कभी नही लाभ उठाते, किंतु तेज और सबल मनुष्य सुन्दर हवा से लाभ उठाने के लिये अपने मन का परदा हमेशा खोले रखते है और यही कारण है कि वे अति शीघ्र निश्चित स्थान पर पहुँच जाते हैं।

× × × ×

फूले हुए कमल की सुगन्ध वायु के द्वारा पाकर भौंरा अपने-आप उसके पास पहुँचा जाता है जहाँ मिठाइयाँ रक्खी रहती हैं वहाँ चींटियाँ अपने-आप चली जाती हैं। भौंरो को या चींटियों को कोई बुलाने नहीं आता। इसी प्रकार मनुष्य जब शुद्ध अन्तः करण और पूर्ण ज्ञानी हो जाता है तब उसके चरित्र की सुगन्ध अपने-आप चारों ओर फैल जाती है और सत्य की खोज करने वा ले अपने-आप उसके पास चले जाते हैं। वह स्वयं उनको बुलाने नहीं जाता कि मेरे पास आओ और मेरा बातें सुनो।

धन का क्या उपयोग है ? उसको सहायता से अन्न, वस्त्र और निवासस्थान प्राप्त किये जा सकते हैं। बस, उनके उपयोग की मर्यादा इतनी ही है, आगे नहीं है। निस्संदेह, धन के बलपर ईश्वर तुझे नहीं दिखायी दे सकता। अथवा धन से कुछ जीवन की सार्थकता नहीं है। यही विवेक की दिशा है. क्या तू इसे समझ गया ?

× × × ×

दान और दया आदि गुणोंका आचरण यदि निष्काम बुद्धि से होता है तो फिर उसकी उत्तमता के लिये कहना ही क्या है। इस आचरण में यदि कही भक्ति की पुष्टि मिल गयी, तब तो फिर ईश्वर- प्राप्ति के लिये और क्या चाहिये ? जहा दया, क्षमा, शान्ति, आदि सद्गुण है, वहीं ईश्वर का वास है ।

× × × ×

जब हम कढ़ाई में मक्खन डाल कर उसे आँच पर रखते हैं, तब उसमें से आवाज होती है ?

× × × ×

जो मक्खन की तरह अच्छी तरह पक कर निःशब्द हो गया है, घी बन गया है, वही ब्रह्मसाक्षात्कार किया हुआ सच्चा ज्ञानी पुरुष है। मक्खन को जिज्ञासु कह सकते हैं। उसमें जो पानी का अंश है, उसे अ ग्नि के संस्कार से निकाल डालना चाहिये। यह पानी का अंश अहंकार है। जब तक यह अहंकार निकालता नहीं तब तक कैसा नृत्य करता है !

जहाँ एक बार वह जलांश – अहंकार बिल्कुल नष्ट हो गया कि बस पक्का घी बन गया। फिर उसमें गड़बड़ सड़बड़ कुछ नहीं।

× × × +

बुद्धिपङ्गु है। श्रद्धा सर्वसमर्थ है। बुद्धि बहुत नहीं चलती, वह थककर कहीं-कहीं ठहर जाती है। श्रद्धा अघटित कार्य सिद्ध कराती है। हाँ, श्रद्धा के बल पर मनुष्य अपार महोदधि भी प्रभु-लीला से पार कर सकता है।

× × × +

पहले हृदय मन्दिर में उसकी प्रतिष्ठा करो पहले ईश्वर का अनुभवपूर्वक ज्ञान कर लो तब वक्तत्व और भाषण भी चाहे करो, इससे पहले नहीं। लोग एक ओर तो संसार कर्दम में लोटते रहते है और दूसरी ओर शाब्दिक ब्रह्म की खिचड़ी पकाया करते हैं। जब विवेक वैराग्यकी गन्ध भी नहीं है, तब सिर्फ 'ब्रह्म ब्रह्म' बकने से क्या मतलब? उससे क्या लाभ होगा? मन्दिर में देवता की स्थापना तो की नहीं, फिर सिर्फ शङ्खध्वनि करने से क्या लाभ ?

× × × ×

पहले हृदय मन्दिर में माधव की प्रतिष्ठा करनी चाहिये। पहले भगवत्प्राप्ति कर लेनी चाहिए। यह न करके सिर्फ 'भौं-भौं' करके शङ्ख बजाने से क्या होगा? भगवत्प्राप्ति होने से पहले उस मन्दिर की सब गंदगी निकाल दे डालनी चाहिये।

विलम्ब का कारण

'सिद्धयोग' का यह अंक लगभग एक सप्ताह से भी कुछ अधिक विलम्ब से प्रकाशित होकर पाठकों की सेवा में पहुंच रहा है। इस अप्रत्याशित विलम्ब का कारण अन्तिम फार्म प्रेस में मशीन पर छपते समय — उसके एक पुर्जे का टूट जाना है। यह टूटा पुर्जा कारखाने से बन कर एक सप्ताह से पहले प्रेस को प्राप्त न हो सका अतः 'सिद्धयोग' की छपाई का सभी शेष काम प्रेस में रुका पड़ा रहा। मुद्रक और प्रकाशक दोनों ही के नाते से इस विलम्ब के लिए हमें खेद है और उसके लिए विनम्रता पूर्वक हम 'सिद्धयोग' के प्रेमी पाठकों से सादर क्षमा प्रार्थी हैं।

—मुद्रक तथा प्रकाशक

आश्रम-समाचार-

प्रभु जी जयन्ती-महोत्सव

(हमारे प्रतिनिधि द्वारा)

२५, २६ और २७ मार्च १९६९ को श्री सिद्ध गुफा सवाई की पावन भूमि पर प्रभु जी जयन्ती-महोत्सव सदा की भांति अतीव उत्साह और उल्लास पूर्ण वातावरण में मनाया गया। मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, हरियाणा और दिल्ली, काश्मीर आदि दूरस्थ प्रदेशों के बहुसंख्यक योगप्रेमी साधक और धर्मानुरागी भाई-बहनों ने अतीव श्रद्धा और सम्मान के साथ उत्सव में सम्मिलित होकर सद्गुरु देव के दर्शन और उनके अमूल्य प्रवचनों का लाभ उठाया।

बाहर से आये हुए भाई-बहनों के आवास की व्यवस्था-आश्रम के उद्यान की खुली भूमि पर छोलदारियां लगा कर की गई थी। छोलदारियों की पंक्तियों ने आश्रम भूमि को एक उपनगरी का सा रूप दे दिया था जिसकी शोभा बिजली के रंग-बिरंगे बल्वों के प्रकाश में अति मनमोहक हो जाती थी। प्रभुजी की साधना स्थली पर यह समारोह केवल चहल-पहल मात्र का समारोह नहीं था किन्तु सचमुच यह एक योग महा सम्मेलन ही था जो उन लीलामय की ख्याति के अनुरूप ही था। और इस योग महा-सम्मेलन के मुख्य संयोजक थे योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जिनके आदेश और नियंत्रण में जयन्ती महोत्सव अथवा इस योग महा सम्मेलन की प्रत्येक कार्य्यवाही या गति-विधि का संचालन होता था अत्यन्त व्यवस्था और शान्ति के साथ। प्रभु जी की पवित्र स्थली का एक-एक कण समारोह में सम्मिलित होने वाले के व्यक्तित्व पर अपना पूर्ण प्रभाव डाल रहा था। अनन्त श्री सद्गुरु देव की उपस्थिति उनकी महान तपस्या तथा उज्ज्वल चरित्र निष्ठा से सभी का तन और मन प्रभावित था। इसी का कारण था कि समारोह में आये हुए कई एक भाई-बहनों के बहुमूल्य आभूषण भूल से इधर-उधर पड़े रह जाने पर भी जिन्हें मिले उन्होंने उन्हें यथा स्थान जिन के थे उनके पास आश्रम कार्यकर्त्ताओं के माध्यम से पहुंचा दिया।

प्रत्येक दिन समारोह की कार्य्यवाही तीन भागों में विभाजित रहती थी। प्रथम भाग में कार्य्यवाही का आरम्भ गुरु गीता की कथा से होता था जिसकी विद्वतापूर्ण व्याख्या श्री सद्गुरुदेव जी द्वारा की जाती थी। दोपहर को १ से ३ तक महिला-सत्संग चलता था जिसका संचालन बहन द्रोपदी देवी जी करती थीं।

तीसरी सत्संग में जो प्रायः ३॥ से ५ बजे तक चलता था दक्षिण भारत के सुविख्यात

योगिराज श्रीनृसिंहमूर्ति जी महाराज जो प्रभुजी के सम्पर्क में अधिक काल तक रहे हैं अपने तथा उनके बीच के जीवन-प्रसंगों की चर्चा विशेष रूप से किया करते थे। योगिराज श्री नृसिंहमूर्ति जी महाराज के यह चर्चा-प्रसंग बहुत ही रोचक, ज्ञान वर्द्धक और उपदेशात्मक होते थे। श्रोता इन्हें बड़ी ही तन्मयता से सुनते थे

सायंकाल प्रभुजी की सामूहिक आरती तथा कीर्तन और भजन-गायन का अति रोचक कार्यक्रम रहता था। आरती और कीर्तन की तन्मयता और साधकों का ध्यानस्थ हो जाना तथा विविध सांस्कृतिक कार्यक्रम इस काल के कार्यक्रम के मुख्य आकर्षण होते थे।

इस त्रिदिवसीय समारोह का अन्तिम दिन राम-नवमी का दिन था और वही जयन्ती समारोह का मुख्य दिन होता है। इस दिन दूरस्थ और समीपवर्ती क्षेत्र के हजारों नर-नारी सम्मेलन में श्री सद्गुरुदेव से दीक्षा लेने और श्री सिद्ध गुफा सवांई की पावन रज को प्रसाद रूप में ग्रहण करने की अभिलाषा व आकांक्षा लेकर भाग लेने आते हैं। इसी दिन प्रातः श्री गुरुदेव जी महाराज के आदर्श से वेदपाठी विप्रों द्वारा सामूहिक वेद पाठ होता है जिसे बड़ी श्रद्धा और तन्मयता से वे अपने प्रमुख शिष्यों और साधकों के साथ सुनते हैं तथा उसकी समूची कार्यवाही का विधिवत् सम्पादन कराते हैं। वेदपाठ की सम्पन्नता के बाद -ब्राह्मण भोजन से आज के दिन के लिए विशेषरूप से आयोजित सार्वजनिक भण्डारे का शुभारम्भ हो जाता है। भण्डारे में पंक्ति बद्ध बैठकर भोजन पाने वालों की संख्या कई हजार होती है स्त्री पुरुष बालक और वृद्ध सभी इसका प्रसाद पाकर अपने को धन्य समझते हैं।

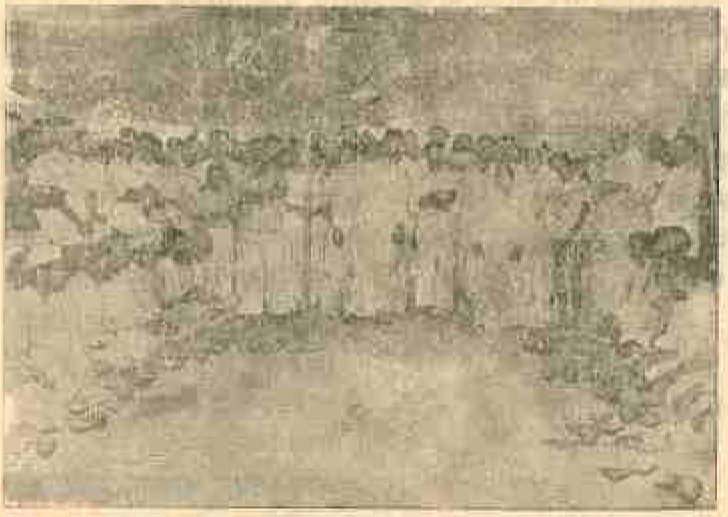

(वेदपाठ सुनते हुए श्री सद्गुरुदेव जी)

सम्मेलन में इसी दिन श्री सद्गुरु देव जी का विशेष और मुख्य प्रवचन होता है। तथा इसी दिन यौगिक आसनों का प्रदर्शन सार्व-जनिक रूप से आसन-विशेषज्ञ ब्रह्मचारियों द्वारा किया जाता है। श्री सद् गुरु देव जी प्रदर्शित आसनों की व्याख्या करते चलते थे और यह बतलाते जाते थे कि किस आसन के करने से क्या लाभ होता है। धनुर्वेद की कुछ प्रक्रियाओं का प्रदर्शन ब्रह्मचारी नोरताराम ने कुशलता से करके सभी को प्रभावित किया तथा प्राणायाम के कुछ प्रभावशाली प्रदर्शन भी इन्होंने किए।

ब्रह्मचारी हरिभक्त ने जो काश्मीर से आये थे अपने रोचक ध्यानानुभव सुनाते हुए बताया कि उन्हें किस प्रकार आकाशवाणी से सवांई की श्री सिद्ध गुफा की महत्ता और श्री सद्गुरुदेव जी की महिमा का परिचय मिला। इसी आकाशवाणी के आधार पर वे सवांई आश्रम आये और श्री सद्गुरुदेव के बारे में जैसा उन्हें बताया गया था वैसा ही सब कुछ उन्होंने उनमें पाया। श्री हरिभक्त चैतन्य जी ने अपने प्रवचन में और अनेक धार्मिक अनु-भूत तथ्यों पर प्रकाश डाला।

समारोह की समाप्ति सदा याद रहने वाले वातावरण में हुई। समाप्ति के बाद भी बाहर से आये हुए साधक आश्रम की तपस्थली में मानसिक शान्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से कई दिन तक ठहरे रहे, जो श्री सद्गुरुदेव की आज्ञा और आशीर्वाद लेकर बाद में सुवि-धानुसार अपने-अपने स्थानों को रवाना हुए।

श्री गुरुदेव जी का कार्यक्रम

अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने जयन्ती महोत्सव सम्पन्नता के बाद भोपाल में श्री सिद्ध गुफा योग-प्रचार शाखा के तत्वावधान में आयोजित योग प्रचार सम्मेलन में गत मास में भाग लेकर कुम्भ-स्नान के लिए उज्जैन प्रस्थान किया था। वहां से लौटकर उनके कार्यक्रम इस प्रकार रहे :—

४ मई से ६ मई तक	—	शामली, जिला मुजफ्फर नगर में योग-प्रचार
७ मई से १५ मई तक	—	मच्छीवारा लुधियाना में योग-प्रचार।
१७ मई से १८ मई तक	—	सहारनपुर (मैदा मिल में) विश्राम।
१९ मई से २० मई तक	—	मच्छर हेड़ी सहारनपुर में योग-प्रचार।
२१ मई को	—	ऋषिकेश के लिए प्रस्थान।
२४, २५, २६ मई	—	योग साधन आश्रम ऋषिकेश के योग-महा-सम्मेलन में प्रचार।
२७ मई से १ जून तक	—	ऋषिकेश में निवास।

पता :—
योग साधन आश्रम, रेलवे रोड,
ऋषिकेश, देहरादून।

—व्यवस्थापक

जीवन-निर्माण को नई दिशा देने वाले

हमारे प्रकाशन

१.	योगासन चित्रपट ।	१) २५
२.	योग-योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलालजी की स्वहस्त लिखित जीवन कथायें ।	१) २५
३.	ब्रह्मचारी गोपालानन्द ।	१)
४.	योगीराज स्वामी मुलखराज जी ।	१)
५.	योग क्या ?	) २५
६.	यम-नियम ।	) ३७
७.	आठ योगी ।	१)
८.	समाधिस्था योगनियें ।	१)
९.	सवांई के चमत्कारिक चरित्र ।	) ७५
१०.	भोग, रोग और योग ।	१)
११.	योगेश्वर चरित्र माला [भजन]	) ६०
१२.	श्री महाप्रभु जी का गीतकाव्य [कविता]	) ७५
१३.	सुधा-संगीत [भजन]	) ५०
१४.	इन्द्र शर्मा के आठ भजन	) १०
१५.	श्री सद्गुरु संकीर्तन भजन-माला ।	) ६०
१६.	जीवन तत्व साधन ।	) ५०

मिलने का पता :—

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन

योग-प्रशिक्षण केन्द्र, श्री सिद्ध गुफा

सवांई (आगरा)

जीवनमुक्त

यदि किसी की मृत्यु अच्छी तरह हो, कोई सुखपूर्वक मरे तो अनजान लोग कहते हैं कि वह धन्य हो गया। पर यह लोगों की उलटी समझ है। वे यह समझ कर कि अन्त में भगवान से भेंट होती है, स्वयं ही अपना घात करते हैं। जिसने जीवित रहने की दशा में ही अपना जन्म सार्थक नहीं किया, उसकी आयु व्यर्थ बीती। भगवान से उसकी भेंट नहीं हो सकती। जब बीज ही नहीं बोया गया तब वह उगेगा कहाँ से? ईश्वर का भजन करने से ही मनुष्य पावन और मुक्त होता है। व्यापार करने से धन का लाभ होता है। यह बात सभी जानते हैं कि बिना दिये कुछ नहीं मिलता और बिना बोये कुछ नहीं उगता। जिस प्रकार कोई आदमी अपने स्वामी की सेवा तो न करे, पर उससे अपना वेतन मांगे, उसी प्रकार अभक्त लोग बिना भक्ति किये ही अन्त में मोक्ष चाहते हैं पर इस प्रकार उन्हें मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। जिसने अपने जीवन-काल में भगवद्भक्ति ही न की हो, मरने पर उसे मुक्ति कैसे मिल सकती है? जो जैसा करता है, वह वैसा ही फल पाता है। यदि भगवान का भजन न किया जाय तो अन्त में मुक्ति नहीं मिलती। चाहे कोई देखने में अच्छी मौत क्यों न पावे, पर भक्ति के बिना उसकी अधोगति ही होती है। इसलिए साधु लोग धन्य हैं जो जीते जी अपना जन्म सार्थक कर लेते हैं। जो जीवन मुक्त और ज्ञानी है, उसकी मृत्यु चाहे युद्ध-क्षेत्र में हो और चाहे श्मशान में, वह धन्य ही होता है।

[समर्थ श्री रामदास]

मुद्रक - देवीप्रसाद शर्मा, 'दिव्य' कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलाँ ताजगंज आगरा – १